अभिनव सोलह कारण विधान

मूल प्राकृत अपभ्रंश जयमाला
रयधू कवि कृत

●

रूपान्तर
आशुकवि फूलचंद जी शास्त्री 'पुष्पेन्दु'
खुरई (सागर) म० प्र०

●

सम्पादक
साहित्य सेवी कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'
खुरई (सागर) म० प्र०

●

(कुन्थु सागर स्वाध्याय सदन प्रकाशन)

●

प्रकाशक
रतनलाल पंकजराय जैन कालका वाले
१२८६ वकीलपुरा देहली-६

प्रथम-संस्करण	महावीर जयंती	प्रदेय-राशि
११०० प्रति	वी० नि० सं०-२५०८	५) रुपया

भावना भव नाशिनी

"भावना भव नाशिनी"—यह सूक्ति यद्यपि जितनी अपने में पूर्णतया सटीक है तथापि उतनी ही सापेक्ष भी। क्योंकि उसके गर्भ में साधना का बीजांकुर शक्ति रूप में सुषुप्त पड़ा है, जो पांचों समवायों का योग पाकर यथाकाल साध्यरूप कल्पवृक्ष बनकर व्यक्त होगा। भावना की बलवत्ता जहाँ अपने लक्ष्य के केन्द्र बिन्दु के दर्शन करने मात्र तथा ध्येय पर सर्वस्व झुकाने पर ही अवलम्बित है वहाँ साधना की बलवत्ता में सम्पूर्ण रूप से स्व-प्रवृत्ति, पर निवृत्ति रूप निश्चय व्यवहार परक समग्र क्रियात्मकता समाविष्ट है। अर्थात्-जब ध्यान-ध्याता-ध्येय एक रूप हो जाते हैं तभी चारित्र्य की पूर्णता होती है। इसीलिए लौकिक सूक्ति में भी प्रसिद्ध है—कि "भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है।" निश्चय ही यदि भावना आत्मकेन्द्र या परमात्म केन्द्र के प्रति सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान रूप है तो साधना यानी निश्चय-व्यवहार परक कर्त्तव्य उसके प्रति सम्यक् चारित्र स्वरूप समझना चाहिये। चूँकि भावना ही साधना की प्राथमिक भूमिका है। इसीलिए चारों ही अनुयोगों में भूमिकानुसार यथा प्रसंग भावनाओं की शैली पाई जाती है। यथा बारह भावना, वैराग्य-भावना, समाधिमरण-भावना, मेरी भावना आदि। ऐसी ही सोलह कारण भावना एक प्रशस्ततम भावना है जो विरले ही सम्यग्यदृष्टि जीवों के द्वारा तीर्थंकर या केवलियों-श्रुत केवलियों के पादमूल में भाई जाती हैं। सम्पूर्ण लोक के जीव-मात्र की मंगल-कामना के उदात्त भाव उस महापुरुष के हृदय में प्रतिष्ठित होते हैं। तभी तो यह जीव मानवता की पराकाष्ठा में परमात्म तत्त्व को प्राप्त कर तीर्थंकर पद का धारी होता है। ऐसे तीर्थंकर प्रत्येक कल्पकाल में चौबीस ही होते हैं। विदित हो कि संसार में तीर्थंकरत्व पद ही सर्वोच्च है। इस पद के धारकों के पुण्य परमाणुओं की प्रेरणा से इन्द्रादिकों को भी भक्ति वश पंच कल्याणकों में आना पड़ता है और निरन्तर दुःख भोगी नारकी भी कुछ समय के लिए शान्ति को प्राप्त करते हैं। इस पद की प्राप्ति सामान्य पुण्य से नहीं किन्तु असाधारण पुण्य से होती है अर्थात् जिन शुभ कार्यों द्वारा बांधे हुए पुण्य के उदय से इन्द्रादि पद प्राप्त होते हैं उस पुण्य में भी ऐसी शक्ति नहीं कि तीर्थंकरत्व पद की प्राप्ति रूप फल को दे सके। इसीलिए तो कहा है कि

"पुण्य फला अरिहंता ।" यहां इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि पुण्य सर्वथा उपादेय ही है क्योंकि उसके सुफल से अरहंत व तीर्थंकर पद प्राप्त होते हैं, परन्तु उसका अर्थ तो यह है कि स्वधर्म के दर्शन ज्ञान आचरण से उपचार रूप में उनके अनन्यतम पुण्य-वैभव का साहचर्य होता है सो यह शुभाशुभ राग की देन नहीं ; प्रत्युत वस्तु स्वभाव रूप धर्म की देन है तभी तो पुण्य परमाणुओं से घटाटोप घिरे रहने पर भी अरहंतों का चैतन्य पुण्यों के ठाठ को स्पर्श नहीं करता । अस्तु

यहाँ इस प्रसंग में सोलह कारण भावनाओं के महत्त्व का आकलन कराने का हमारा कोई प्रयोजन नहीं है । क्योंकि सम्पूर्ण विधान ही आमूल चूल उनके ही गुणगान-वर्णन में पूर्ण हो रहा है । यहाँ तो केवल हम प्रस्तुत पूजन विधान के निर्माण की भावना और साधना का ही संक्षिप्त दिग्दर्शन आपको कराना चाहेंगे ।

जैन-जगत में आनुष्ठानिक क्रियाओं में पूजन-विधानों का महत्त्व कुछ कम नहीं है । उनमें भी सोलह कारण पूजा-विधान-उद्यापन, दशलक्षण पूजन-विधान-उद्यापन तो सर्वोपरि तथा सर्व प्रचलित हैं । जहाँ-तहाँ धर्मात्मा श्रावकों वा महिलाओं में कविवर श्री टेकचंद जी द्वारा रचित "सोलह-कारण-विधान" का ही प्रचार है । हो भी क्यों नहीं ? क्योंकि इस क्षेत्र में वही तो एक इकाई है, दूसरा कहाँ से लाया जावे ? कविवर के सभी विधान यद्यपि सांगोपांग शास्त्रोक्त विधि से रचे गये हैं और सुविख्यात हैं तथापि उनमें हम आध्यात्मिकता को गौण पाते हैं ।

हमारी संस्था "श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय-सदन" खुरई (जिला सागर) म० प्र० के संरक्षक वयोवृद्ध श्रद्धेय श्री रतनलाल जी जैन देहली वालों ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया और प्रेरित किया कि रयधू कवि कृत प्राकृत षोडश कारण जयमाला को आधार बनाकर ऐसा विधान तैयार कीजिये जो कि आधुनिक नवीनतम पूजाओं की शैली में रचा गया हो; रोचक, सुगम एवं अध्यात्म रस से भरपूर हो । इस कार्य के लिए उन्होंने कविवर रयधू कृत उक्त विधान की एक हस्त लिखित प्रति भी भेजी । श्री रयधू कवि ने "दशलक्षण जयमाला के समानान्तर ही षोडश कारण भावना की मात्र जयमाला ही लिखी है । उस जयमाला को ही प्रधानतया आध्यात्मिक केन्द्र बिन्दु बनाकर हमने पूजनाष्टक सहित इस सर्वोपयोगी विधान को जैन जगत के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस किया है ।

विधान कर्त्ता वाचक बन्धु देखेंगे कि यह विधान अपने में कितना मौलिक सरस-सरल और अभिनव है । वर्तमान आध्यात्मिक युग की चेतना

के लिए तो मानो संजीवन ही है। सम्पूर्ण विधान में केवल एक ही प्रकार के छंद की योजना है और वह है युगकवि श्री युगल जी कृत "केवल रवि किरणों" वाली देव-शास्त्र गुरु पूजा का अनुकरणीय छंद......पूजन विधान के क्षेत्र में यह हमारा अपना नया प्रयोग जैन जगत की वेदी पर प्रतिष्ठित है। देखें कितना लोकप्रिय होता है ?

स्मरण रहे कि रयधू कवि की यह अनमोल कृति "प्राकृत षोडश कारण जयमाला भाषा" अथवा 'बृहत् षोडश कारण-विधान" के नाम से सर्वप्रथम खुरई नगर के स्वनाम धन्य स्व० श्री छोटे लाल जी जैन के तत्वावधान में जैन साहित्य मन्दिर सागर द्वारा श्रावण संवत् १९८३ में प्रकाशित हुई थी। जिसका द्वितीय संस्करण में उक्त संस्था द्वारा पुनः प्रकाशित किया गया था। वही प्राकृत भाषा की जयमाला अब श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन खुरई के संरक्षण में भाषा पूजन विधान के रूप में प्रकाशित हो रही है। आशा है आध्यात्मिकता के इस उगते हुए सूरज के प्रकाश में यह अभिनव कृति अवश्य ही चमत्कारी होगी !

—कमल कुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

अजस्र-प्रेरणा-स्रोत

वयोवृद्ध श्री पन्नालाल जी जैन किताब वाले इस जिनवाणी रूपी गंगा की गंगोत्री हैं, उद्गम केन्द्र हैं।

प्रकाशक, सम्पादक, लेखक और वाचक वृन्दों का सारा श्रेयाभिनन्दन उन्हीं की मूल प्रेरणा को समर्पित है।

जिस प्रकार बिन्दु में सिन्धु की सारी गुणवत्ता समाहित रहती है उसी प्रकार हमारे इस अजस्र-प्रेरणा-स्रोत में हमारी साहित्य गंगा का विराट् प्रवाह समाया हुआ है। उनके प्रति हम अपना श्रद्धा भाव व्यक्त करते हैं।

भारत की राजधानी के समस्त जैन ग्रन्थ भंडारों की सुरक्षा-सुव्यवस्था ही जिस व्यक्ति के जीवन का सारांश बन गया हो; प्रत्येक शोध स्नातक की सुविधाओं को जुटाने वाला जो एक मूक स्वयं सेवक हो—उसके प्रति भला कौन नत मस्तक नहीं होगा ? अतः पुनश्च श्री पन्नालाल जी जैन किताब वालों की प्रेरणा का हम हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

—सम्पादक

माँड़नाकृति

अभिनव सोलह कारण विधान

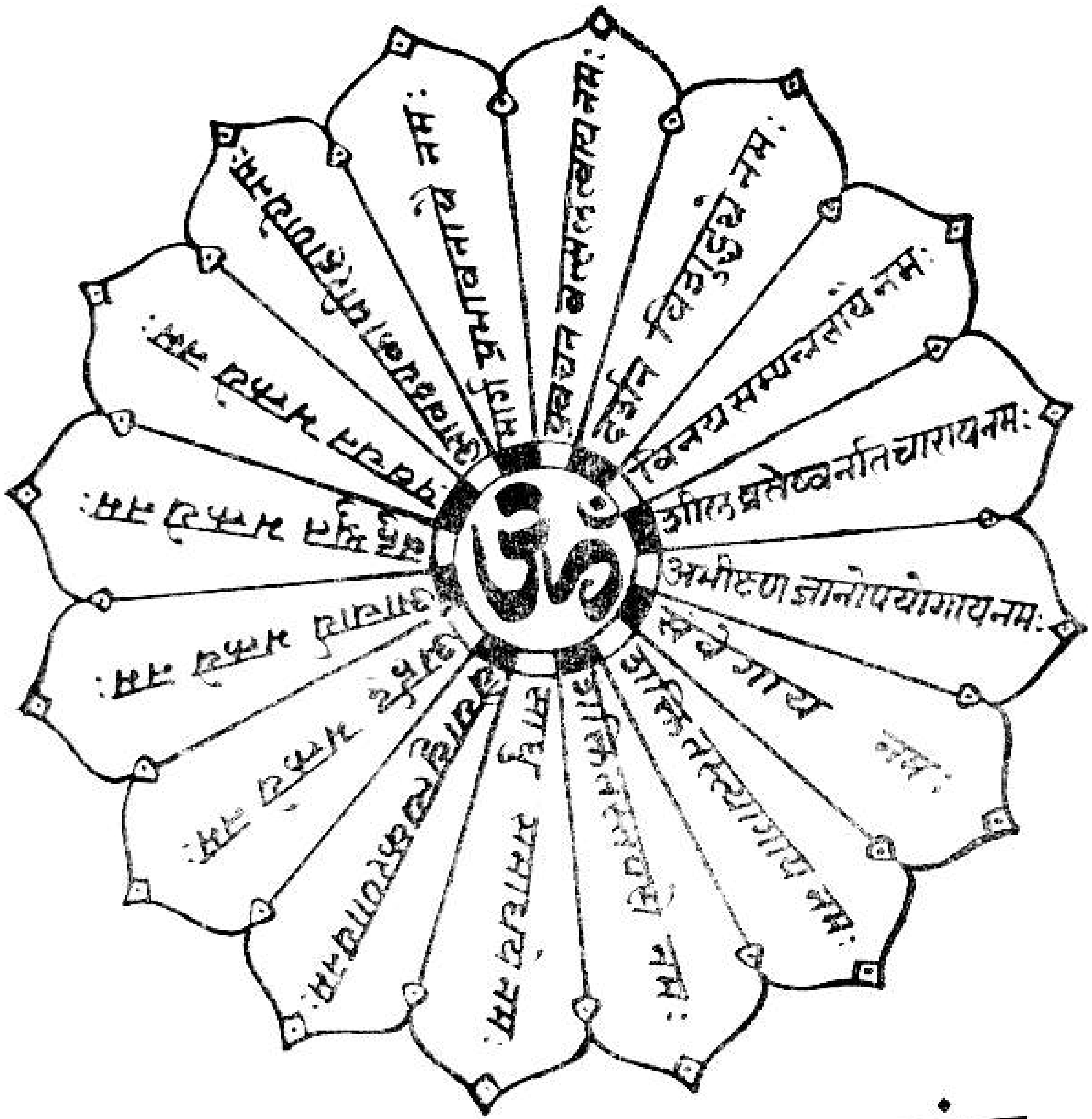

श्री षोडश कारण यंत्र

षोडश कारण व्रत-विधि

फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को षोडश कारण का मंडल माँडकर और उसमें सिंहासन पर चौबीस तीर्थकरों की प्रतिमा तथा षोडश कारण यंत्र स्थापन करके अभिषेक पूर्वक पूजन करे। पश्चात् समुच्चय मंत्र का जाप करे।

पूजन के दिनों में किसी अतिथि तथा अभ्यागत को भोजन कराके आप भी मौन सहित एक स्थान में बैठ कर एक बार शुद्ध भोजन करे—दूसरी बार जलादि तक भी ग्रहण न करे—अपने आपको इसी समय से व्रती समझे। गृहारम्भादि कार्यों का त्याग करे, विकथा को छोड़े और निरन्तर दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन करता रहे। अपना समय धर्म ध्यान में व्यतीत करे, दिन में निद्रा न ले, प्रमाद तथा खेद दूर करने के लिये रात्रि में यथा सम्भव निद्रा लेवे, इसी प्रकार एक मास आश्विन वदी एकम तक निरन्तर करे। पूर्णिमा का व्रत धारण करके प्रतिपदा को उपवास, फिर दोज को पारणा, पुनः तीज को उपवास, चौथ को पारणा इस प्रकार एक उपवास एक पारणा करके व्रत करे यह मध्यम व्रत की विधि है।

व्रत के बीच में पर्व के दिनों (अष्टमी-चतुर्दशी) के आजाने पर अथवा तिथि की न्यूनाधिकता के कारण कभी-कभी वेला (दो उपवास) तेला (तीन उपवास) भी आ जाते हैं—उनको यथा संभव पालन करना चाहिये। पश्चात् आश्विन वदी २ (गुजराती भादों वदी-२) को व्रत की पूर्णता के लिये भी उक्त प्रकार अभिषेक-पूजादि करके अतिथि-अभ्यागत को भोजन कराके, दीन दुखियों को यथा योग्य दानादि देवे। पश्चात् सुहृद साधर्मी जनों के साथ बैठकर आप भोजन करे। व्रत की निर्विघ्न समाप्ति के हर्ष में विशेष रूप से जिनेन्द्र गुण गान भजन पूर्वक जागरण करे। इतना विशेष और करना चाहिये कि धारणा और पूर्णता के दिन तो समुच्चय मंत्र का जाप और नित्य प्रति दो-दो दिनों में यंत्र लिखित १६ मंत्रों में से क्रमशः एक-एक मंत्र का जाप करना चाहिए। इस प्रकार १६ मंत्र ३२ दिन में पूर्ण होते हैं।

उत्कृष्ट व्रत, वेला-तेला आदि पूर्वक किया जाता है। मध्यम में एक उपवास और एक पारणा इकंतरे से करे। जघन्य व्रत में पर्व के दिनों में पहले दिन उपवास करके नित्य एकासना करना चाहिए।

—पं० कमल कुमार शास्त्री 'कमद'

षोडश कारण उद्यापन-विधि

ऊपर लिखी व्रत विधि के अनुसार माघ, चैत्र और भाद्रपद मासों में एक-एक मास पर्यन्त तीन शाखाओं के व्रत स्वशक्ति अनुसार उत्कृष्ट मध्यम अथवा जघन्य रीति से १६ वर्ष तक करे। पश्चात् निम्न विधि पूर्वक उद्यापन करना चाहिये :—

जिस मास से षोडश कारण व्रत प्रारम्भ किया हो उस मास तक उसे पूर्ण करके उसके अनन्तर शाखा वाले मास में समस्त साधर्मी जनों को बुलाकर उद्यापन की विधि प्रारम्भ करे।

सर्व प्रथम जिन चैत्यालय में एक वेदी या बड़े चौकोर तख्ते पर षोडश कारण का सुन्दर माँड़ना मांड कर उसके मध्य चतुर्विंशति जिन प्रतिमा और यंत्र की स्थापना करके अभिषेक पूर्वक बृहत् षोडश कारण विधान अर्थात् इसी पुस्तक में मुद्रित पूजा जयमाला का प्रारम्भ करके शान्ति पाठ पूर्वक विसर्जन करे।

षोडश कारण मंडल, यंत्र के समान ही सोलह कोठों का पांच प्रकार के शुद्ध रंग में चाँवलों को रंग कर बनाया जाता है। किन्तु कोठों में मंत्रों के नाम न लिखकर साँथिया (स्वस्तिक) बना देना चाहिये।

पूजन के समय प्रत्येक कोठे में प्रत्येक धर्म की जयमाला पढ़कर पूर्णार्घ्य चढ़ाना चाहिये। पूजा शुद्ध वस्त्रों को पहिन कर करना चाहिये तथा मंडल को चँवर छत्र आदि प्रातिहार्य तथा अष्ट मंगल द्रव्य से विविध प्रकार सजाना चाहिये।

उद्यापन में सोलह प्रकार के उपकरण जैसे शास्त्र, चौकी अछावर, चँदेवा, झालर, घंटा, चँवर, छत्र, पूजा के बर्तन आदि चैत्यालय में भेंट करना चाहिये। कम से कम सोलह श्रावकों को भोजन करावे। बादाम सुपारी-श्रीफल आदि कोई फल वितरण करे। तीर्थों, शिक्षा संस्थाओं को, दीन-दुःखी जनों को यथाशक्ति भोजन-वस्त्र-औषधि आदि दान देवे। ज्ञानदान में शास्त्र बाँटे, अतिथि तथा अभ्यागतों का सन्मान करे।

इस सर्वोत्कृष्ट व्रत का फल तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण है।

—**सम्पादक**

शुभारम्भ

ॐ जय जय जय । नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

आर्या-छन्द

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।।
ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः
(पुष्पाञ्जलिंक्षिपामि)

चत्तारि-मंगलं

१. अरिहंता मंगलं २. सिद्धा मंगलं ३. साहू मंगलं
४. केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं

चत्तारि-लोगुत्तमा

१. अरिहंता लोगुत्तमा २. सिद्धा लोगुत्तमा ३. साहू-
लोगुत्तमा ४. केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि

१. अरिहंते सरणं पव्वज्जामि २. सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
३. साहूसरणं पव्वज्जामि ४. केवलिपण्णत्तं
धम्मं सरणं पव्वज्जामि
ॐ नमोऽर्हते स्वाहा
(पुष्पाञ्जलिंक्षिपामि)

नोट :—'नित्य-पूजा' नाम की पुस्तक में प्रकाशित "अपवित्रः पवित्रो वा" से लेकर सिद्ध पूजा पर्यन्त नित्य-पूजा करने के पश्चात् सोलह कारण भाषा पूजन करना चाहिये ।

श्री सोलहकारण भाषा-पूजा

(कविवर श्री द्यानतराय जी)

अडिल्ल-छन्द

सोलह कारण भाय, तीर्थंकर जे भये,
हरषे इन्द्र अपार, मेरु पै ले गये।
पूजा करि निज धन्य, लखो बहु चावसौं,
हम हूँ षोडश कारण भावें भावसौं ॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणानि अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्री दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारणानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणानि अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत सन्निधीकरणम्।

(छंद-अथाष्टकम्)

कंचनझारी निर्मलनीर, पूजों जिनवर गुण गम्भीर।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दरश विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः जलम्।
चंदन घसौं कपूर मिलाय, पूजौं श्री जिनवर के पाय।
परम-गुरु हो, जय-जय नाथ परम गुरु हो ॥ दरश० ॥
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः चन्दनम्।
तन्दुल धवल अखण्ड अनूप, पूजौं जिनवर तिहुँ जगभूप।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥ दरश० ॥
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः अक्षतम्।

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार, पूजौं जिनवर जग-आधार।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।। दरश० ।।
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः पुष्पम् ।

सद नेवज बहुविध पकवान, पूजौं श्री जिनवर गुणखान ।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।। दरश० ।।
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः नैवेद्यम् ।

दीपक ज्योति तिमिर क्षयकार, पूजों श्री जिन केवल धार।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।। दरश० ।।
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः दीपम् ।।

अगर कपूर गन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय ।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।। दरश० ।।
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः धूपम् ।।

श्रीफल आदि बहुत फल सार, पूजों जिन वांछित दातार।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।। दरश० ।।
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः फलम् ।।

जल-फल आठों द्रव्य चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मन लाय।
परम-गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।। दरश० ।।
ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यः अर्घ्यम् ।।

जयमाला

दोहा—षोडश कारण जे करें, हरें चतुरगति वास ।
पाप-पुण्य सब नाश के, ज्ञान-भानु परकास ।।

(चौपाई छन्द १६ मात्रा)

दरशविशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई ।
विनय महाधारै जो प्रानी, शिव-वनिता की सखी बखानी ।।

शील सदा दृढ़ जो नर पालै, सो औरन की आपद टालै ।
ज्ञानाभ्यास करै मन माहीं, ताके मोह महातम नाहीं ।।
जो संवेग भाव विस्तारै, स्वर्ग मुक्ति पद आप निहारै ।
दान देय मन हर्ष विशेखै, इह भव जस पर भव सुख देखै ।।
जो तप तपै खपै अभिलाषा, चूरे कर्म शिखर गुरु भाषा ।
साधु-समाधि सदा मन लावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव जावै ।।
निश दिन वैयावृत्य करैया, सो निश्चय भव-नीर तिरैया ।
जो अरिहन्त-भगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै ।।
जो आचारज-भगति करैं है, सो निर्मल आचार धरे है ।
बहु श्रुतवन्त-भगति जो करई, सो नर संपूरण श्रुत धरई ।।
प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द-दाता ।
षट् आवश्यक काल जो साधै, सोई रत्नत्रय आराधै ।।
धर्म प्रभाव करै जो ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी ।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै ।।

दोहा

ये ही षोडश भावना, सहित धरे व्रत जोय ।
देव-इन्द्र-नागेन्द्र पद, द्यानत शिव-पद होय ।।

ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धयादि षोडश कारणेभ्यः अर्घ्यम् ।

इत्याशीर्वादम पुष्पांजलिं क्षिपेत्

षोडश-कारण-भावना

जाप्य-मन्त्र

१. ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्ये नमः
२. ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः
३. ॐ ह्रीं शीलव्रतेष्वनतिचाराय नमः
४. ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय नमः
५. ॐ ह्रीं संवेगाय नमः
६. ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः
७. ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः
८. ॐ ह्रीं साधु समाधये नमः
९. ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः
१०. ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः
११. ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये नमः
१२. ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तये नमः
१३. ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये नमः
१४. ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नमः
१५. ॐ ह्रीं मार्ग प्रभावनायै नमः
१६. ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नमः

(इति जाप्यं दद्यात्)

●

अभिनव सोलहकारण विधान

(स्थापना)

शुभ नाम कर्म की पुण्य प्रकृति, सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर है।
उसके आश्रव का कारण भी, शुभ भाव प्रशस्त शुभंकर है।।
जिन केवलियों श्रुत केवलियों, के पाद मूल को पा करके।
भाई जातीं जो भावनाएँ, सोलह कारण अपना करके।। १।।

वे सम्यग्दृष्टि महा पुरुषों की, आत्म-शुद्धि की छाया में।
पनपा करतीं धर्मानुराग वश, पुण्य बंध की माया में।।
उन सोलह कारण भावनाओं का आह्वानन स्थापन है।
जिन बिम्बों के प्रतिबिम्बों में, अपने स्वरूप का अर्चन है।। २।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारण समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् स्वाहा।। इत्याह्वाननम्।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारण समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्वाहा।। इति स्थापनम्।।

ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धयादि षोडशकारण समूह अत्र मम-सन्निहितो भव भव वषट् स्वाहा।। इति सन्निधापनम्।।

जलम्

भव-भव का सारा मैल धुला, अब इच्छाओं की प्यास नहीं।
सम्यक् ज्ञानामृत पा करके, मृगजल पर अब विश्वास नहीं।।
दर्शनविशुद्धि आदिक प्रशस्त, शुभ भावनाओं का जल लाया।
तीर्थंकर पुण्य-प्रकृति पाने, सोलहकारण को अपनाया।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडश कारणेभ्यो जलम् नि०स्वा०।।१।।

चन्दनम्

तन-मन की तपन मिटी मेरी, बुझ रही राग की आग यहाँ ।
बचनामृत शीतल चन्दन से, चेतन में उठा विराग यहाँ ।।
दर्शनविशुद्धि आदिक प्रशस्त, शुभ भावनाओं के चन्दन से ।
कृतकृत्य हुआ मेरा जीवन, सोलह कारण अभिनन्दन से ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यो चन्दनम् नि०स्व० ।।२।।

अक्षतम्

क्षत-विक्षत पर्यायों पर से, उठ गई हमारी दृष्टि प्रभो !
निज को अखण्ड अक्षत पाकर, बदली सब लौकिक सृष्टि विभो !
दर्शन विशुद्धि आदिक प्रशस्त, शुभ भावनाओं के तन्दुल हैं ।
भव-सागर पार उतरने को, ये सोलह कारण ही पुल हैं ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यो अक्षतम् नि०स्वा० ।।३।।

पुष्पम्

इन रंग-बिरंगे फूलों पर, अब कभी नहीं मँडराऊँगा ।
विषयों के चुभते शूलों पर, अब नहीं भूल कर जाऊँगा ।।
दर्शनविशुद्धि आदिक प्रशस्त, शुभ भावनाओं के सुमन चुने ।
तीर्थंकर प्रभु के पद पाकर, सोलह कारण के भाव बने ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यो पुष्पम् नि०स्वा० ।।४।।

नैवेद्यम्

जब दर्शन-पूजन करने से, तन-मन-लोचन सब तृप्त हुए ।
तब क्षुधा मिटाने तथाकथित, ये षट्रस व्यंजन व्यर्थ हुए ।।
दर्शनविशुद्धि आदिक पशस्त, शुभ भावनाओं का चरु लाया ।
तीर्थंकर पुण्य प्रकृति पाने, सोलह कारण को अपनाया ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यो नैवेद्यम् नि०स्वा० ।।५।।

दीपम्

इस ज्ञान-दीप के जलने से, मिथ्यात्व अँधेरा भाग गया ।
जग का व्यवहार सचेत हुआ, निश्चय अपने में जाग गया ।।
दर्शनविशुद्धि आदिक प्रशस्त, शुभ भावनाओं की ज्योति जगी ।
सोलह कारण के दीपक से, युग-युग की काली रात्रि भगी ।।
ॐ ह्रीं दर्शनाविशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यो दीपम् नि०स्वा० ।।६।।

धूपम्

प्रभु भक्ति-वन्दना के द्वारा, शुभ-अशुभ विकार हुए स्वाहा ।
शुद्धोपयोग की पावक में, चिच्चमत्कार चमका आहा ।।
दर्शनविशुद्धि आदिक प्रशस्तक, शुभ भावनाओं की धूप उड़ी ।
सोलह कारण के सौरभ से, निज परणति सहज स्वरूप जुड़ी ।।
ॐ ह्रीं दर्शनशुद्धवियादि षोडश कारणेभ्यो धूपम् नि०स्वा० ।।७।।

फलम्

है नर्क निगोद अशुभ का फल, शुभ का फल तो मानवता है ।
मानवता का फल संयम है, संयम को देव तरसता है ।।
दर्शनविशुद्धि आदिक प्रशस्त, शुभ भावनाओं की फलावली ।
तीर्थंकर के पद-पद्मों में, सोलह कारण की खिली कली ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यो फलम् नि०स्वा० ।।८।।

अर्घ्यम्

जल चन्दन अक्षत पुष्प और, नैवेद्यम् एकाकार हुए ।
जड़ दीप धूप फल अष्ट, द्रव्य ये पूजा के उपचार हुए ।।
दर्शनविशुद्धि आदिक प्रशस्त, शुभ भावनाओं का अर्घ्य लिया ।
तीर्थंकर पद की प्राप्ति हेतु, सोलह कारण पीयूष पिया ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडश कारणेभ्यो अर्घ्यम् नि०स्वा०।।९।।

अथ दर्शनविशुद्धि भावना-पूजा

(कुण्डली-छन्द)

झूठ सहित हिंसा तथा, भ्रान्ति रूप मिथ्यात्व ।
जहाँ नहीं हो दृष्टिगत, वहीं शुद्ध सम्यक्त्व ।।
वहीं शुद्ध सम्यक्त्व अष्ट अंगों से भूषित ।
दरश-विशुद्धी प्रथम भावना नर-सुर पूजित ।।
जल-चन्दन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप फल—
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज-तल ।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये नमः ।

यहाँ पर इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये ।
पश्चात्—

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये फलम् नि० स्वा०

नोट : यदि प्रथक प्रथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो तो—
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये अर्घ्यम् नि० स्वा० पढ़कर अ
चढ़ाना चाहिये ।

दर्शनविशुद्धि भावना जयमाला

(१)

जो पंचमगति पहुँचाने में, कारण है मुक्ति दिलाने में।
जो दुर्गति दूर हटाने में, कारण पीयूष पिलाने में ।।
भव-भव के घने अंधेरे को, जो सूरज बनकर नष्ट करे।
उसको भाऊँ उसको ध्याऊँ, जो जग के सारे कष्ट हरे ।।
है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण कर लूँ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व-पर तरण-तारण करलूँ ।।

(२)

निज मत में मैं, निःशंक रहूँ, निःस्पृही रहूँ भव-भोगों से।
मैं नहीं घृणा के भाव रखूँ, रत्नत्रयधारी लोगों से ।।
जो देव शास्त्र गुरु खोटे हैं, उनकी उपासना नहीं करूँ।
इन चार भावनाओं द्वारा, निज की विराधना नहीं करूँ ।।
है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण कर लूँ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्वपर तरण-तारण कर लूँ ।।

(३)

साधर्मी हैं जो भी अपने, उनकी छिपाऊँगा कमजोरी।
जो डवाँडोल है धर्मों में, उनको टिकाऊँगा उस ओरी ।।
वात्सल्य भावना पालूँगा, अपने सहधर्मी भाई से।
अपनत्व रखूँगा मैं उनसे, बरतूँगा मानवताई से ।।
है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण कर लूँ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व पर तरण-तारण करलूँ ।।

(४)

होवे प्रभावना दिग् दिगन्त, जैनत्व और जिन-शासन की ।
त्यागूँ विमूढताएँ तीनों, गुरु, देव, लोक-आराधन की ।।
मैं कु-गुरु कु-देव कु-धर्म छोड़, उनके भक्तों से मुख मोड़ूँ ।
सम्यग्दर्शन से जीवन का, चैतन्य पूर्ण नाता जोड़ूँ ।।
है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण करलूँ ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व-पर तरण-तारण करलूँ ।।

(५)

निज जाति और कुल का मुझमें, हे नाथ नहीं अभिमान रहे ।
मद, कर्म-निमित्तक वैभाविक, परणति है इतना ध्यान रहे ।।
हो अंगहीन कुल हीन भले, चाण्डाल अहिंसा व्रतधारी ।
सम्यक्त्व प्राप्त करके होता, वह स्वर्गों का भी अधिकारी ।।
है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण करलूँ ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व-पर तरण-तारण करलूँ ।।

(६)

प्रभुता के मद से, वैभव से, चारों गति में भव-भ्रमण हुआ ।
निर्ग्रन्थ मार्ग के द्वारा ही, आत्म-स्वरूप में रमण हुआ ।।
यह काया ही जब नश्वर है, तब रूप-रंग का क्या कहना ?
इसलिए रूप मद से मुनिवर, हूँ चाह रहा वंचित रहना ।।
है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण करलूँ ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व-पर तरण-तारण करलूँ ।।

(७)

ग्यारह अंगों के पाठी भी, जो बड़े बड़े श्रुत ज्ञानी हैं ।
परलक्षी ज्ञान क्षयोपशम से, वे विद्या के अभिमानी हैं ।।

जब महा तपस्वी द्रव्य लिंग, धारण करके भी भव्य नहीं।
तब ज्ञान तपस्या का मद करना, अज्ञों का कर्त्तव्य नहीं ।।

है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण करलूं ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व-पर तरण-तारण करलूं ।।

(८)

विज्ञान कलाओं, ऋद्धि-सिद्धि के, भौतिक बल पर इतराना ।
सम्यग्दर्शन से च्युत होकर, चारों गति के चक्कर खाना ।।

यह वीतराग विज्ञान कला का, भेद जिन्होंने पाया है ।
गर्वों का करके सर्वनाश, कर्मों को मार भगाया है ।।

है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शन-विशुद्धि धारण करलूँ ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व-पर तरण-तारण करलूँ ।।

(९)

शंकादिक आठों दोषों से, आठों गर्वों से दूर रहूँ ।
ये छह अनायतन क्षय करके, तीनों में नहीं विमूढ़ रहूँ ।।

इस भाँति दोष ये पच्चीसों, तजकर सम्यक्त्व जगाऊँगा ।
भावों का अर्घ्य बना करके, पापों को दूर भगाऊँगा ।।

है यही भावना सर्व प्रथम, दर्शनविशुद्धि धारण करलूँ ।
फिर सोलह कारण भा-भाकर, मैं स्व-पर तरण-तारण करलूँ ।।

ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्ध्यै महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।।

इति दर्शन विशुद्धि भावना-पूजा समाप्ता

अथ विनय सम्पन्नता भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

दर्शन ज्ञान चरित्र तप, निधियों का बहुमान ।
हो शुचि मन वच काय से, विनय शीलता जान ।।

विनय शीलता जान भावना ये ही द्वितीया।
यही विनय सम्पन्नताई है भव्य स्वकीया॥

जल, चन्दन, वनशालि पुष्प चरु दीप धूप-फल।
युक्त अर्घ्य ले करूँ सर्मपित चरणाम्बुज-तल॥

ॐ ह्रीं विनय सम्पन्नतायै नमः

यहाँ इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये। पश्चात्—

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै जलम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै चन्दनम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै अक्षतम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै पुष्पम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नैवेद्यम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै दीपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै धूपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै फलम् नि० स्वा०

नोट : यदि पृथक पृथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये।

●

विनय सम्पन्नता भावना जयमाला

(१)

सदृष्टि ज्ञान चारित्र्य तपो, निधियों के पावन चरणों में।
झुक-झुक जाऊँ बलि-बलि जाऊँ, आदर्शमयी अनुकरणों में॥

यह विनय-भाव भव नाशक है, जल जाते दुःखों के जंगल।
यह विनय-भाव वह पावक है, छा जाते मंगल ही मंगल॥

निज मनोभूमि में रोप इसे, आजीवन इसको अपनाऊँ।
इस विनयशीलता के गुण पर, झुक झुक जाऊँ, बलि बलि जाऊँ॥

(२)

यह विनय आग की चिनगारी, भव-तरु को शीघ्र जलाने में।
यह तीन लोक में सर्व श्रेष्ठ, गुण है मिथ्यात्व गलाने में॥
यह विनयशीलता ही केवल, जिन-शासन का है मूल अरे!
मिथ्या मत वालों को लेकिन, है विनयशीलता शूल अरे!
निज मनोभूमि में रोप इसे, आजीवन इसको अपनाऊँ।
इस विनयशीलता के गुण पर, झुक झुक जाऊँ, बलि बलि जाऊँ॥

(३)

यह मनुज जन्म है शुष्क वृक्ष, मानो चमड़े का विनय बिना।
जो जलकर स्वाहा हो जाता, अभिमान अग्नि से विनय बिना॥
सद्देव शास्त्र गुरु सद्दर्शन, सन्मति की विनय, विनय होती।
व्रत संयम में रुचि रखना भी, व्यवहार चरित्र विनय होती॥
निश्चय से श्रद्धा रुचि पूर्वक, आतम स्वभाव पर झुक जाऊँ।
निज मनोभूमि में रोप इसे, आजीवन इसको अपनाऊँ॥

(४)

चैतन्य, मूर्ति, ज्ञानानन्दी निज आतम का ही ध्यान धरूँ।
क्षण क्षण उसका अनुभव करके, चारों गतियों का भ्रमण हरूँ॥
मैं निज स्वरूप को राग-द्वेष से मैला नहीं बनाऊँगा।
यह विनय रूप पाथेय मोक्ष के मार्ग साथ ले जाऊँगा॥
निज मनो भूमि में रोप इसे, आजीवन इसको अपनाऊँ।
इस विनयशीलता के गुण पर, झुक झुक जाऊँ, बलि बलि जाऊँ॥

(५)

मेरे जीवन की एक घड़ी भी, व्यर्थ नहीं जाने पावे ।
पल भर को भी सपने में भी, नहिं अहंभाव आने पावे ।।
बस यही भावना भाता हूँ, मैं नित्य विनय सम्पन्न रहूँ ।
फिर मुक्ति-रमा के वरण हेतु, निज चेतन में प्रच्छन्न रहूँ ।।
निश्चय से श्रद्धा रुचि पूर्वक, आतम स्वभाव पर झुक जाऊँ ।
निज मनोभूमि में रोप इसे, आजीवन इसको अपनाऊँ ।।

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै महार्घ्यं नि० स्वाहा ।।

इति विनय सम्पन्नता भावना पूजा समाप्ता

●

अथ निरतिचार शील-व्रत भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

व्रत पंचक संयुक्त हो, सदाचार अ-कषाय ।
निरतिचार पच्चीस शुभ, कृत्यों का समुदाय ।।
कृत्यों का समुदाय, शीलव्रत उसको जानो ।
इसी तीसरी प्रबल भावना को सन्मानो ।।
जल चन्दन वनशालि पुष्प, चरु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज-तल ।।

ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रताय नमः ।

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये । पश्चात्—

ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रताय जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रताय चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रताय अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रताय पुष्पम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं निरतिचार शील व्रताय नैवेद्यम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं निरतिचार शील व्रताय दीपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं निरतिचार शील व्रताय धूपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं निरतिचार शील व्रताय फलम् नि० स्वा०

नोट : यदि पृथक पृथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं निरतिचार शील व्रताय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा पढ़कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये।

●

निरतिचार शील व्रत भावना-जयमाला

(१)

दुर्गतियों के दुख हरता है, शुभ गतियों के सुख भरता है।
व्रत-जप-तप-संयम-सदाचार में जीवन फूँका करता है॥
यह महा शीलव्रत निरतिचार मैं दृढ़ता पूर्वक पाल सकूँ।
इस चंचल मन के मर्कट के, पाँवों में साँकल डाल सकूँ॥
इसलिए भावना भाता हूँ, मैं शील महाव्रत पालन की।
हो नमस्कार इसको मेरा, यह सीढ़ी सोलह कारण की॥

(२)

अतिचार हीन व्रत शुद्ध शील, संयम मैं अंगीकार करूँ।
मन के मतवाले हाथी पर, शीलांकुश से अधिकार करूँ॥
स्त्रीलिंग वाची कोई हो नारी तिर्यंचनी या देवी।
परछाईं भी इनकी छोड़ूँ मन वचन और काया से भी॥
इसलिये भावना भाता हूँ, मैं शील महाव्रत पालन की।
हो नमस्कार इसको मेरा, यह सीढ़ी सोलह कारण की॥

(३)

अश्लील और शृंगारमयी, सब चर्चाओं से दूर रहूँ।
वासना जन्य कामुकता तज मैं ब्रह्मचर्य में चूर रहूँ॥
ये विकथाएँ खोटे किस्से, सीखूँगा, नहीं सिखाऊँगा।
ये भण्ड प्रदर्शन हाव-भाव, देखूँगा नहीं दिखाऊँगा॥
इसलिए भावना भाता हूँ, मैं शील महाव्रत पालन की।
हो नमस्कार इसको मेरा, यह सीढ़ी सोलह कारण की॥

(४)

प्रभु अल्प वयस्का बाला के, प्रति पुत्री का सा भाव रहे।
प्रभु सम वयस्क सुन्दर युवती, पर बहिन समान झुकाव रहे॥
प्रभु अधिक वयस्का प्रौढ़ कामिनी पर माता-सी दृष्टि रहे।
प्रभु द्रव्य दृष्टि में लिंग भेद, से परे समूची सृष्टि रहे॥
इसलिए भावना भाता हूँ, मैं शील महाव्रत पालन की।
हो नमस्कार इसको मेरा, यह सीढ़ी सोलह कारण की॥

(५)

इसके कारण देवेन्द्र आदि, आ चरणों में शत नमन करें।
इसके कारण ही साधु मोक्ष, नगरी में सत्वर गमन करें॥
हाँ, शील शिरोमणि रोगी या कोढ़ी बदसूरत रहे भले।
पर राजा प्रण भी मोहित हो कर गिरते उसके चरण तले॥
इसलिए भावना भाता हूँ, मैं शील महाव्रत पालन की।
हो नमस्कार इसको मेरा, यह सीढ़ी सोलह कारण की॥

(६)

जो कुछ भी व्रत जप-तप संयम, जीवन में अंगीकार किया।
वह निरतिचार हो निर्मल हो, क्या इतना कभी विचार किया?

अपने स्वरूप में टिक रहना ही निश्चय आवश्यक कहलाता ।
पर में आसक्ति न रखना ही, व्यवहार शील संज्ञा पाता ।।
इसलिए भावना भाता हूँ, मैं शील महाव्रत पालन की ।
हो नमस्कार इसको मेरा, यह सीढ़ी सोलह कारण की ।।

(७)

हो शील सहित व्रत थोड़े भी, पर फल वे बहुत अधिक देते ।
हो शील रहित व्रत बहुत अधिक, वे बिलकुल सफल नहीं होते ।।
जो भव्यशील व्रत का साधन, करते हैं अपने तन-मन से ।
वे नर होकर भी दुनियां में, विचरा करते नारायण से ।।
इसलिए भावना भाता हूँ, मैं शील महाव्रत पालन की ।
हो नमस्कार इसको मेरा, यह सीढ़ी सोलह कारण की ।।
ॐ ह्रीं निरतिचार शीलव्रताय महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ।

इति निरतिचार शील व्रत-भावना पूजा समाप्ता

●

अथ अभीक्षणज्ञानोपयोग भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

आत्म ज्ञान चिन्तन-मनन, यथा काल स्वाध्याय ।
सामायिक सद्गुरु विनय, तत्व-ज्ञान समझाय ।।
तत्व-ज्ञान समझाय धर्म का मर्म बताना ।
है अभीक्षण ज्ञानोपयोग जिन शास्त्र बखाना ।।
जल चंदन बनशालि पुष्प चरु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ सर्मापित चरणाम्बुज तल ।।

ॐ ह्रीं अभीक्षण ज्ञानोपयोगाय नमः ।

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये । पश्चात्—

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय जलम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय चंदनम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय अक्षतम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय पुष्पम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय नैवेद्यम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय दीपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय धूपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय फलम् नि० स्वा०

नोट : यदि पृथक पृथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगाय अर्घ्यम् नि० स्वा० पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

●

अभीक्ष्णज्ञानोपयोग-भावना जयमाला

(१)

निज ज्ञान स्वभावी चेतन में, उपयोग निरन्तर बना रहे ।
बस ज्ञान-ज्ञान की धारा में ही सतत अभीक्षण पना रहे ।।
ज्ञानोपयोग की अर्चा को, करता हूँ अष्ट प्रकारों से ।
पुष्पाञ्जलि क्षेपण करता हूँ, निश्चय एवं व्यवहारों से ।।
प्रभु ! यही भावना भाता हूँ, उपयोग ज्ञान में लगा रहे ।
बस ज्ञान ज्ञान में ही मेरा, चैतन्य निरन्तर पगा रहे ।।

(२)

चिन्मात्र आत्मा की क्षण-क्षण प्रभु ! जहाँ भावना होती है ।
निश्चय से उस ज्ञाता-दृष्टा की ज्ञान चेतना होती है ।।

आगम पढ़ने या तत्वों के, चिन्तन में जो उद्योगी हैं।
शास्त्रोपदेश में लगे हुए ही सतत ज्ञान उपयोगी हैं ॥
प्रभु ! यही भावना भाता हूँ, उपयोग ज्ञान में लगा रहे।
बस ज्ञान-ज्ञान में ही मेरा, चैतन्य निरन्तर पगा रहे ॥

(३)

होकर तटस्थ निःस्वार्थमयी, तत्वोपदेश जो करता है।
होकर स्वभाव में ही स्थित, जो वस्तु स्वरूप सुमरता है ॥
जो विषय-कषायों-शल्यों को, अन्तर से मार भगाता है।
उस वीतराग विज्ञानी का, ज्ञानोपयोग कहलाता है ॥
प्रभु ! यही भावना भाता हूँ, उपयोग ज्ञान में लगा रहे।
बस ज्ञान-ज्ञान में ही मेरा, चैतन्य निरन्तर पगा रहे ॥

(४)

चंचल मन स्थिर हो जाता, खो जाता जाल विकल्पों का।
जिन शासन तत्व प्रसारक है, नाशक है अन्तर्जल्पों का ॥
पापों का क्षय, पुण्यों की जय, निर्भय प्रभावना दर्शन की।
अभ्यास इसी का करो सतत, महिमा है इसके अर्जन की ॥
प्रभु ! यही भावना भाता हूँ, उपयोग ज्ञान में लगा रहे।
बस ज्ञान-ज्ञान में ही मेरा, चैतन्य निरन्तर पगा रहे ॥

(५)

है नाम कर्म की पुण्य प्रकृति, सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर की।
बँधती रहती, मिलती रहती, अनुपम विभूति बाह्यान्तर की ॥
जो हैं वैभव सम्पन्न गृहस्थ, अथवा विरक्त सन्यासी हैं।
वे करें अर्चना इस गुण की, हम भी इसके अभिलाषी हैं ॥

प्रभु ! यही भावना भाता हूँ, उपयोग ज्ञान में लगा रहे ।
बस ज्ञान-ज्ञान में ही मेरा, चैतन्य निरन्तर पगा रहे ।।
ॐ ह्रीं अभीक्षण ज्ञानोपयोगाय नमः महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावना पूजा समाप्ता

अथ संवेग-भावना पूजा

(कुंडली छंद)

धन-जन पुत्र कलत्र से, उदासीनता भाव ।
जग के विषय कषाय प्रति होवे तनिक न चाव ।।
होवे तनिक न चाव भावना संवेगी है ।
सतत आत्म-कल्याण, साधना हृदय जगी है ।।
जल चंदन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप-फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज तल ।।

ॐ ह्रीं संवेगाय नमः

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये । पश्चात्—

ॐ ह्रीं संवेगाय जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं संवेगाय चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं संवेगाय अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं संवेगाय पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं संवेगाय नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं संवेगाय दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं संवेगाय धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं संवेगाय फलम् नि० स्वा०

यदि पृथक पृथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं संवेगाय अर्घ्यम् नि० स्वा० पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

संवेग भावना जयमाला

(१)

संसार देह से, भोगों से, जो उदासीनता रहती है।
या 'वत्थु सहावो धम्मो' में, जो आत्मलीनता रहती है॥
संवेग इसे ही कहते हैं, इस पर जग जीवन वारूँगा।
ले स्वर्ण-पात्र में अष्ट द्रव्य, श्रद्धा से अर्घ्य उतारूँगा॥
संवेग-भावना मन में हो, संवेग-साधना जीवन में।
संवेगशीलता नाच उठे, सोलह कारण के आँगन में॥

(२)

जैनेन्द्र धर्म दश लक्षण है, रत्नत्रय धर्म विलक्षण है।
करुणामय धर्म अहिंसा में, जो जीव मात्र का रक्षण है॥
सो स्व-पर अहिंसा-धर्म साधु, श्रावक दोनों के लिये कहे।
इन सब धर्मों के प्रति मेरा, हे नाथ! परम अनुराग रहे॥
संवेग-भावना मन में हो, संवेग-साधना जीवन में।
संवेगशीलता नाच उठे, सोलह कारण के आंगन में॥

(३)

मेरा स्वरूप है सहज-स्वस्थ, स्वाभाविक एवं सुन्दर है।
केवल दर्शन, कैवल्य ज्ञान से, भरा हुआ रत्नाकर है॥
है वस्तु स्वभाव यही केवल, इसका मैं चिन्तन नित्य करूँ।
है आतमधर्म, केवल प्रशस्त, इसका आराधन नित्य करूँ॥
संवेग-भावना मन में हो, संवेग साधना जीवन में।
संवेगशीलता नाच उठे, सोलह कारण के आँगन में॥

(४)

नारायण या प्रतिनारायण, या चक्रवर्ति बलभद्र हुये ।
सामान्य केवली तीर्थंकर, निर्बाध तपस्वी रुद्र हुये ॥
देवेन्द्र हुए अहमेन्द्र हुए, धर्मों के पुण्यों के फल से ।
निज भूमिकाओं के अनुसारी पद प्राप्त हुए इनके बल से ॥
संवेग-भावना मन में हो, संवेग साधना जीवन में ।
संवेगशीलता नाच उठे, सोलह कारण के आँगन में ॥

(५)

धर्मों में, धर्मों के फल में आस्तिक्य रहे, अनुराग रहे ।
तन-धन-जन-विषय-कषायों से, मन में अतिसाम्य विराग रहे ॥
सार्धमि बन्धु को देख देख, कर लूँ प्रमोद मन में धारण ।
भोगों को तज कर भावनाएँ, भाऊँ अघ हर सोलह कारण ॥
संवेग-भावना मन में हो, संवेग साधना जीवन में ।
संवेगशीलता नाच उठे सोलह कारण के आँगन में ॥

ॐ ह्रीं संवेगाय नमः महार्घ्यम् नि० स्वाहा

इति संवेग-भावना पूजा समाप्ता

●

अथ शक्तितस्त्याग भावना पूजा

(कुंडली छंद)

रत्नत्रय धारी पुरुष, अधिकारी सत् पात्र ।
उन्हें चतुर्विध दान दे, यथाशक्ति चिन्मात्र ॥
यथाशक्ति चिन्मात्र दान ही त्याग-भावना ।
कही 'शक्तितः त्याग' मयी अनुपम प्रभावना ॥

जल चन्दन वनशालि, पुष्प चरु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ, समर्पित चरणाम्बुज-तल ।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये पश्चात्—

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय चंदनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय फलम् नि० स्वा०

यदि प्रथक प्रथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो, तो—

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय अर्घ्यम् नि० स्वा० पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

शक्तितस्त्याग भावना जयमाला

(१)

जग के वैभव या विषय भोग, संयोग आदि क्षण भंगुर हैं ।
इनमें ममता हम नहीं रखें, ये तो वियोग के अंकुर है ।।
ये हमें छोड़ दें इसके भी, पहिले हम इनको छोड़ सकें ।
अपनी क्षमता के माफिक, इनकी ममता से मुख मोड़ सकें ।।

इसलिए भावना भाता हूँ, मैं यथाशक्ति जग त्याग करूँ ।
अतएव अर्चना करता हूँ, जीवन में भक्ति विराग भरूँ ।।

(२)

तन-मन-धन बाह्य परिग्रह हैं, मिथ्यात्व कषायें भीतर के ।
इनके प्रति मूर्च्छा भाव त्याग, विष रस त्यागूं विषयान्तर के ।।
पद लोलुप होकर पर पदार्थ की कभी याचना नहीं करूँ ।
संकल्प विकल्पों में फंस कर, मैं मूढ़ कामना नहीं करूँ ।।
इसलिए भावना भाता हूँ, मैं यथाशक्ति जग त्याग करूँ ।
अतएव अर्चना करता हूँ, जीवन में भक्ति विराग भरूँ ।।

(३)

शुभ उपयोगों में मग्न नग्न, निर्ग्रन्थ संत भी त्यागी हैं ।
तत्वोपदेश श्रावक समूह को देने के बडभागी हैं ।।
इसलिए सुगति के अधिकारी, वे तारण-तरण कहाते हैं ।
शुद्धोपयोग को छू छूकर, शुभ उपयोगी बन जाते हैं ।।
अतएव भावना भाता हूँ, मैं यथाशक्ति जग त्याग करूँ ।
अतएव अर्चना करता हूँ, जीवन में भक्ति विराग भरूँ ।।

(४)

उत्तम मध्यम एवं जघन्य, सत्पात्र कहे जिन-शासन में ।
छट्टे पंचम चौथे क्रमशः, गुण थानक अन्तर आतम में ।।
मुनिवर्य आर्यिका व्रती और अविरत सम्यग्दृष्टी तीनों ।
सत्पात्र दान के अधिकारी इनको परखो, इनको चीन्हों ।।
औषधि का और अभयता का, आहारों का सद्ज्ञानों का ।
जिन शक्ति त्याग कहलाता है, दीनों को देना दानों का ।।

(५)

जिस गृहस्थ और श्रावक के घर में त्याग वृत्ति मय दान नहीं।
उसके घर जैसा कोई दूसरा मरघट और मसान नहीं ।।
उस घर के मुर्दे मुखिया को मानो सब नोंच खसोट रहे ।
सब पुत्र-कलत्र गिद्ध बनकर चोंचों की दे दे चोट रहे ।।
मैं भक्ति प्रीति से इसीलिए शक्तितः त्याग करना चाहूँ ।
चारों दानों के पुण्यों से, निज जीवन को भरना चाहूँ ।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः महार्घ्यम् नि० स्वाहा

इति शक्तितस्त्याग भावना पूजा समाप्ता

अथ शक्तितस्तपो भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

तप के बारह भेद हैं छः अन्तर छः बाह्य ।
स्वर्ग-मोक्ष फल प्राप्ति में भव्यों को हैं ग्राह्य ।।
भव्यों को है ग्राह्य तपस्या यथाशक्ति हो ।
निजानन्द चैतन्य तत्त्व में पूर्ण भक्ति हो ।।
जल चन्दन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज तल ।।

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये पश्चात्

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे पुष्पम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नैवेद्यम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे दीपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे धूपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे फलम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे अर्घ्यम् नि० स्वाहा पढ़ कर अर्घ्य चढाना चाहिये ।

शक्तितस्तपो भावना-जयमाला

(१)

गार्हस्थिक आशा-तृष्णा का, जंजाल काटने वाला है ।
काया के सुख को कृश करने के हेतु समझिये भाला है ।।
धन जन की वांछा बहुत दूर, वांछा है नहीं लंगोटी की ।
इच्छा निरोध से ही होती सत्यार्थ तपस्या चोटी की ।।
योगासन, प्राणायाम, ध्यान इत्यादि बाहिरी तप धारूँ ।
चैतन्य प्रतापी अन्तरंग आनन्द समाधी विस्तारूँ ।।

(२)

तन-मन इन्द्रिय का दमन करूँ मैं काम वासना शमन करूँ ।
सब बाह्य परिग्रह की मूर्छा मिथ्यात्व कषायें वमन करूँ ।।
आहार पान की खबर भूल, गिरि कन्दराओं प्रति गमन करूँ ।
निष्कम्प रहूँ उपसर्गों में निज परमातम को नमन करूँ ।।
योगासन प्राणायाम ध्यान इत्यादि बाहिरी तप धारूँ ।
चैतन्य प्रतापी अन्तरंग आनन्द समाधी विस्तारूँ ।।

(३)

मैं करूँ निर्जरा चिर संचित, शठ बँधे हुए जड़ कर्मों की ।
हो राग-द्वेष से रहित प्रवृति, व्रत-समिति पंच मुनि धर्मों की ॥
पंचेन्द्रिय मन को दूँ लगाम, केशों का लुँचन स्वयं करूँ ।
समता वंदन आलोचन थुति, प्रतिक्रमण काय उत्सर्ग करूँ ॥
योगासन प्राणायाम ध्यान, इत्यादि बाहिरी तप धारूँ ।
चैतन्य प्रतापी अन्तरंग, आनन्द समाधी विस्तारूँ ॥

(४)

सर्दी गर्मी वर्षा ऋतु में, त्रैकाल्य नग्न परिवेश धरूँ ।
स्नान दंत धावन तज कर, आजीवन भू-पर शयन करूँ ॥
कर-पात्री होकर खड़े खड़े, नीरस अवाक् आहार करूँ ।
अत्यल्प दिवस में एक बार लूँ, ताकि विषय परिहार करूँ ॥
योगासन प्राणायाम ध्यान, इत्यादि बाहिरी तप धारूँ ।
चैतन्य प्रतापी अन्तरंग, आनन्द समाधी विस्तारूँ ॥

(५)

है यही तपस्या वन्दनीय, योगीश्वर इसको धरते हैं ।
इस उत्तम तप के द्वारा ही, कैवल्य प्राप्त वे करते हैं ॥
मैं करूँ अर्चना इस तप की, श्रद्धा से अर्घ्य उतारूँगा ।
लोकाग्र शिखर पर स्थित जो, वह मुक्ति मोहिनी पाऊँगा ॥
योगासन प्राणायाम ध्यान, इत्यादि बाहिरी तप धारूँ ।
चैतन्य प्रतापी अन्तरंग, आनन्द समाधी विस्तारूँ ॥

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः महार्घ्यम् नि० स्वाहा ।

इति श्री शक्तितस्तपो भावना पूजा समाप्ता

अथ साधु-समाधि भावना पूजा

(कुण्डली-छन्द)

जहाँ नहीं भय मरण का, जहाँ नहीं भय रोग।
जहाँ नहीं उपसर्ग भय, जहाँ न इष्ट-वियोग ॥
जहाँ न इष्ट वियोग और संयोग अनिष्टा।
वहीं भावना साधु-समाधि कही उत्कृष्टा ॥
जल चंदन वनशालि, पुष्प चरु दीप धूप फल।
युक्त अर्घ्य ले करूँ, समर्पित चरणाम्बुज तल ॥

ॐ ह्रीं साधुसमाधये नमः

यहाँ इस मंत्र से १०८ बार जाप्य देना चाहिये। पश्चात्—

ॐ ह्रीं साधु समाधये जलम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं साधु समाधये चन्दनम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं साधु समाधये अक्षतम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं साधु समाधये पुष्पम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं साधु समाधये नैवेद्यम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं साधु समाधये दीपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं साधु समाधये धूपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं साधु समाधये फलम् नि० स्वा०

यदि पृथक पृथक द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं साधु समाधये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये।

साधु-समाधि-भावना-जयमाला

(१)

जीवन की अन्तिम बेला में, वे साधु समाधि मरण पाते ।
जन्मान्तक और बुढ़ापे से, गुण गण समृद्ध जो भय खाते ।।
भव-भव में नव-नव तन पाया, भव-भव में परिजन सम्मेलन ।
भव-भव में राज्य विभव पाया, भव-भव में जननी जनक शरण ।।
पर साधु-समाधि नहीं पाई, अब तक मैंने इस कारण से ।
सम्यक्त्व रहित हो कतराया, क्योंकि रतन त्रय धारण से ।।

(२)

भव-भव में स्त्री लिंग पाया, भव-भव में हुआ नपुंसक भी ।
भव-भव में पुल्लिंग पर्यायों का, हुआ आत्मा धारक भी ।।
भव-भव में हुआ नरकगामी, कामी क्रोधी तिर्यंच हुआ ।
भव-भव मिथ्यात्व अवस्था में, पापों का प्रचुर प्रपंच हुआ ।।
पर साधु-समाधि नहीं पाई, अब तक मैंने इस कारण से ।
सम्यक्त्व रहित हो कतराया, क्योंकि रतन त्रय धारण से ।।

(३)

भव-भव में स्वर्ग सिधार देव, मैं हुआ समस्त निकायों का ।
भव-भव पूजे अरहंत देव, ले आश्रय नित्य परायों का ।।
भव-भव आलोचन क्षमापणा, प्रति क्रमण आदि के स्वांग धरे ।
भव-भव में दुद्धर तप करके, फल चाहे अगणित माँग भरे ।।
पर साधु-समाधि नहीं पाई, अब तक मैंने इस कारण से ।
सम्यक्त्व रहित हो कतराया, क्योंकि रतनत्रय धारण से ।।

(४)

भव-भव में समवशरण जाकर, देखा मैंने अरहन्तों को ।
भव-भव में ग्यारह अंग पढ़े देखा गणधर से सन्तों को ।।
फिर भी अनादि से ले कर के, अब तक संसार नहीं छूटा ।
शुभ कार्य सत्य कैसे होते, जब रहा स्वयं ही से रूठा ।।
पर साधु-समाधि नहीं पाई, अब तक मैंने इस कारण से ।
सम्यक्त्व रहित हो कतराया, क्योंकि रतन त्रय धारण से ।।

(५)

तीनों लोकों में दुर्लभ हो, ऐसा कोई पुरुषार्थ नहीं ।
फिर साधु-समाधि अपूर्व रहे, यह आशंका सत्यार्थ नहीं ।।
चारों गतियों का भ्रमण मेट, पंचम गति से भेंटाती है ।
सम्यक्त्व सहित आदर्श मृत्यु ही साधु समाधि कहाती है ।।
उस साधु-समाधि साधना मय जीवन का अर्घ्य उतारा है ।
जिसने संसारी जीवों को, पल भर में पार उतारा है ।।

ॐ ह्रीं साधु समाधये महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति श्री साधु-समाधि भावना पूजा समाप्ता

●

अथ वैयावृत्य भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

वात-पित्त कफ जन्य रुज, कास स्वास या कुष्ट ।
शूलोदर शिर वेदना, वृद्धावस्था रुष्ट ।।
वृद्धावस्था रुष्ट होय यदि साधु वर्ग पर ।
दे औषधि आहार विनय सादर सेवा कर ।।

जल चंदन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज तल ।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः

यहाँ इस मंत्र से १०८ बार जाप्य देना चाहिये, पश्चात्—

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय फलम् नि० स्वा०

यदि पृथक पृथक द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय अर्घ्यम् निर्वयामीति स्वाहा पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

●

वैयावृत्य-भवना-जयमाला

(१)

कर भेद ज्ञान तन चेतन का, जो आत्म-साधना करते हैं ।
ऐसे कृश काय तपस्वी गण, रोगों पर दृष्टि न धरते हैं ।।
औषधि से, पथ्याहारों से, उनकी जो सेवा सुश्रूषा ।
वह वैयावृत्य करण जानो, सोलह कारण की मंजूषा ।।

इसलिए भावना भाता हूँ, गुरु गण की वैयावृत्य करूँ ।
निज सेवा एवं पर सेवा से जीवन यह कृत्कृत्य करूँ ॥

(२)

आचार्य तपस्वी शिष्य ग्लान, गण संघ साधु जो भेद कहे ।
कुल उपाध्याय एवं मनोज्ञ दस, मुनिवर भव को छेद रहे ॥
परिचर्या सेवा सुश्रूषा, करते हैं सभी परस्पर में ।
अपने से श्रेष्ठ मुनीश्वर की, करुणा है उनके अन्तर में ॥
इसलिए भावना भाता हूँ, गुरु गण की वैयावृत्य करूँ ।
निज सेवा एवं पर सेवा से, जीवन यह कृत्कृत्य करूँ ॥

(३)

जो युक्तियुक्त आहार दान, वह है निमित्त तन रक्षण में ।
दोषों का निन्हव कर पर को, स्थिर रखना दशलक्षण में ॥
सम्यग्दर्शन से च्युत होकर, जो श्रावक-मुनि पथ भ्रष्ट हुए ।
उनको सम्हालने वाले ही, वैयावृत्ती उत्कृष्ट हुए ॥
इसलिए भावना भाता हूँ, गुरु गण की वैयावृत्य करूँ ।
निज सेवा एवं पर सेवा से, जीवन यह कृत्कृत्य करूँ ॥

(४)

शिष्यों को शास्त्र पढ़ाना ही, गुरु का शुभ वैयावृत्य कहा ।
गुरु की पद सेवा करना ही, शिष्यों का अनुपम कृत्य कहा ॥
अपने द्वारा अपनी सेवा निज, आत्म ज्ञान से कर लेना ।
निश्चय से वैयावृत्य यही, पर से क्या कुछ लेना-देना ॥
इसलिए भावना भाता हूँ गुरुगण की वैयावृत्य करूँ ।
निज सेवा एवं पर सेवा से जीवन यह कृत्कृत्य करूँ ॥

(५)

जो मोह राग या द्वेष आदि, भावाश्रव चेतन में आते ।
वे जड़ कर्मों की संतति को, द्रव्याश्रव बनकर चिपटाते ।।
उन द्रव्य, भाव, दो कर्मों का, संवर करना निज भावों से ।
अपने स्वरूप में डटना ही, हटना परकीय विभावों से ।।
इसलिए भावना भाता हूँ, गुरुगण की वैयावृत्य करूँ ।
निज सेवा एवं पर सेवा से जीवन यह कृतकृत्य करूँ ।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति वैयावृत्य भावना पूजा समाप्ता

●

अथ अर्हद्भक्ति-भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

मनसा वाचा कर्मणा दो अक्षर का नाम ।
सुमरो 'जिन' निज रूप में, अर्हद्भक्ति ललाम ।।
अर्हद्भक्ति ललाम करो जिनकी उपासना ।
वीतरागता लाने वाली यही भावना ।।
जल चन्दन वनशालि पुष्प, चरु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज-तल ।।

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये । पश्चात्—

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये पुष्पम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नैवेद्यम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये दीपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये धूपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये फलम् नि० स्वा०

यदि पृथक पृथक द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

●

अर्हदभक्ति-भावना-जयमाला

(१)

जो चार घातिया कर्मों को, कर नष्ट इष्ट अरहंत हुए ।
वे प्रकट चतुष्टय दर्श-ज्ञान-सुख-वीर्य अनंतानंत हुए ।।

तीनों लोकों के एक साथ, त्रैकाल्य प्रकट ज्ञाता-दृष्टा ।
केवलज्ञानी परमोत्कृष्ट, जीवों के हित के उपदेष्टा ।।

इन भगवन्तों की भक्ति रहे, अनुरक्ति रहे अरहन्तों की ।
इन समवशरण अधिपतियों की, शत-शत सुरेन्द्र जयवन्तों की ।।

(२)

तीर्थंकर आठों प्रतिहार्य से, मंडित मंगल द्रव्यों से ।
हैं वन्दनीय धरणेन्द्रों से, सुरपति नरपति से भव्यों से ।।

वे क्षुधा तृषादिक अट्ठारह, दोषों से बिल्कुल वंचित हैं ।
कोटिक सूर्यों की तेज राशियें, उनमें युगपत् संचित हैं ।।

इन भगवन्तों की भक्ति रहे, अनुरक्ति रहे अरहन्तों की ।
इन समवशरण अधिपतियों की, शत-शत सुरेन्द्र जयवन्तों की ।।

(३)

व्यवहारतया सुख के कर्त्ता, दुःख के हर्त्ता तीर्थंकर हैं ।
निश्चय से लेकिन वीतराग, निज वैभव के परमेश्वर हैं ।।
मैं उनकी पूजा भक्ति करूँ, अभिनन्दन वन्दन नमन करूँ ।
भव-तारक नर्क निवारक के, निर्दिष्ट मार्ग में गमन करूँ ।।
इन भगवन्तों की भक्ति रहे, अनुरक्ति रहे अरहन्तों की ।
इन समवशरण अधिपतियों की शत-शत सुरेन्द्र जयवंतों की ।।

(४)

उनका ही ध्यान सतत करके, मैं उन जैसा ही बन जाऊँ ।
उन जैसा ही अपना स्वरूप, मैं द्रव्य दृष्टि से लख पाऊँ ।।
फिर मोह कर्म के नाश हेतु, हो नियत साधना व्यवहारी ।
अभिव्यक्त करूँ पर्यायों में, अरहंत अवस्था क्रमवारी ।।
इन भगवन्तों की भक्ति रहे, अनुरक्ति रहे अरहन्तों की ।
इन समवशरण अधिपतियों की, शत-शत सुरेन्द्र जयवन्तों की ।।

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति अर्हद्भक्ति भावना पूजा समाप्ता

●

अथ आचार्य भक्तिभावना-पूजा

(कुंडली छंद)

मुनि पद पूजा वंदना, नमस्कार विनयादि ।
उच्चासन देकर करे, नवधा भक्ति समाधि ।।
नवधा भक्ति समाधि, यही आचार्य भक्ति है ।
श्रावक श्रमणों के द्वारा, कृत यथाशक्ति है ।।

जल-चंदन वनशालि पुष्प, चारु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज तल ।।

ॐ ह्रीं आचार्य भक्तये नमः

यहाँ इस मंत्र से १०८ बार जाप्य देना चाहिये । पश्चात्—

ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये चंदनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये फलम् नि० स्वा०

नोट : यदि पृथक पृथक द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

●

आचार्य भक्ति भावना-जयमाला

(१)

बारह व्रत एवं दशलक्षण धर्मोन्मुखी जिन की चर्या ।
त्रय गुप्ति पंच आचार छहों, आवश्यक पालें आइरिया ।।
इस भाँति मूल गुण छत्तीसों, आचार्य प्रवर धारण करते ।
निर्ग्रन्थ पंथ के पथिक पक्ष, मासोपवास पारण करते ।।
गुणखान तपोनिधि सूरिगणों, के गुण गा अर्घ्य उतारूँगा ।
पुष्पाञ्जलि चरणों में देकर, आचरणों को शृंगारूँगा ।।

(२)

वन-उपवन शैल गुहाओं में, बस धर्म ध्यान जो करते हैं।
या शुक्ल ध्यान की धारा में, वह भेद ज्ञान भी करते हैं॥
प्रायश्चित शिक्षा दीक्षा दे, मुनि संघों के अधिनायक हैं।
जो नय प्रमाण निक्षेप आदि से, आत्मतत्त्व के ज्ञायक हैं॥
गुणखान तपोनिधि सूर गणों के, गुण गा अर्घ्य उतारूँगा।
पुष्पाञ्जलि चरणों में देकर, आचरणों को शृंगारूँगा॥

(३)

पंचांग नमन पद पद्मों में, करता हूँ सब आचार्यों के।
पूजा करने सन्मुख आया, निर्ग्रन्थ दिगम्बर आर्यों के॥
कायोत्सर्ग में अहोरात्रि, लवलीन सतत जो रहते हैं।
भव-कूप भयातुर परीषहों या, उपसर्गों को सहते हैं॥
गुणखान तपोनिधि सूरिगणों, के गुण गा अर्घ्य उतारूँगा।
पुष्पाञ्जलि चरणों में देकर, आचरणों को शृंगारूँगा॥

(४)

मन वचन काय पावन करके, नासाग्र दृष्टि रखने वाले।
आचार्य प्रवर परमेष्ठी हैं, शुद्धोपयोग चखने वाले॥
उनके नीरज चरणों की रज, को छूकर धन्य हुई धरती।
उस धरती का भी अभिनन्दन, मेरी भावुक श्रद्धा करती॥
गुणखान तपोनिधि सूर गणों के, गुण गा अर्घ्य उतारूँगा।
पुष्पाञ्जलि चरणों में देकर, आचरणों को शृंगारूँगा॥

ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति आचार्य भक्ति भावना पूजा समाप्ता

●

अथ बहुश्रुत भक्ति-भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

भवाताप स्मारिका, लोकालोकालोक ।
अनेकान्त वाणी विमल, जिनवर उक्त अशोक ।।
जिनवर उक्त अशोक वचन ही आत्मस्मृति है ।
द्वादशांग के धारी पाठक ही बहुश्रुति हैं ।।
जल चंदन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप-फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज तल ।।

ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये नमः

यहाँ इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये । पश्चात्—

ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये फलम् नि० स्वा०

यदि पृथक पृथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

●

बहुश्रुत भक्ति भावना-जयमाला

(१)

जो उपाध्याय परमेष्ठी हैं, वे बहुश्रुतवंत कहाते हैं।
वे द्वादशांग के ज्ञाता हैं, खुद पढ़ते और पढ़ाते हैं।।
आगम की आगमधारी के प्रति, विनय भक्ति श्रुत भक्ति रहे।
दुर्नय विहीन आगम-प्रवीन, जिनवाणी की अनुरक्ति रहे।।
निश्चय से आत्माध्याय पढ़ूँ, स्वाध्याय करूँ सद्ग्रन्थों का।
बहुमान करूँ बहु श्रुतज्ञानी, गुरु उपाध्याय निर्ग्रन्थों का।।

(२)

जो जिन शास्त्रों के माध्यम से, स्वाध्याय स्वयं का करते हैं।
वे उपाध्याय पाठक मुनिवर, अज्ञान जगत का हरते हैं।।
शास्त्रों का अर्थ लगाते हैं, वाचन करके समझाते हैं।
अक्षर मात्रा का संशोधन कर, लिखते और लिखाते हैं।।
निश्चय से आत्माध्याय पढ़ूँ, स्वाध्याय करूँ सद्ग्रन्थों का।
बहुमान करूँ बहुश्रुत ज्ञानी, गुरु उपाध्याय निर्ग्रन्थों का।।

(३)

खादी के शुद्ध धवल वस्त्रों से, करूँ सुसज्जित सरस्वती।
हर भाँति सुरक्षित रखूँ दिव्य, जिन पत्र प्रतिष्ठित सरस्वती।।
हो स्वर्ण शिलालेखों पर ही, रत्नाक्षर टंकित सरस्वती।
मन मंदिर में जिनवाणी हो, युग युग तक अंकित सरस्वती।।
निश्चय से आत्माध्याय पढ़ूँ, स्वाध्याय करूँ सद्ग्रन्थों का।
बहुमान करूँ बहुश्रुत ज्ञानी, गुरु उपाध्याय निर्ग्रन्थों का।।

ॐ ह्रीं बहुश्रुत भक्तये नमः महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति बहुश्रुत भक्ति भावना-पूजा समाप्ता

अथ प्रवचन भक्ति-भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

अस्तिकाय पांचों छहों द्रव्य सप्त ही तत्त्व ।
अष्ट कर्म की नष्ट विधि नव पदार्थ का सत्त्व ।।
नव-पदार्थ का सत्त्व जीव को मुख्य बतावे ।
सो ही प्रवचन भक्ति सदागम रूप कहावे ।।
जल, चन्दन, बनशालि पुष्प चरु दीप धूप-फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज-तल ।।

ॐ ह्रीं प्रवचन भक्तये नमः

यहाँ इस मंत्र से १०८ बार जाप्य देना चाहिये । पश्चात्—

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये फलम् नि० स्वा०

यदि पृथक पृथक द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये नमः अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा

●

प्रवचन भक्ति-भावना-जयमाला

(१)

कर-तल गत दीपागम द्वारा, उत्तम पदार्थ का अवलोकन ।
करते हैं ज्ञानानंदमयी, निज चेतन का अनुभव दर्शन ।।

परमागम श्री जिन प्रवचन का, प्रभु ! यथाकाल पारायण हो ।
अभिनव पदार्थ छह द्रव्य सात तत्त्वों का जिनमें विवरण हो ।।

हो नमस्कार जिन प्रवचन को, जैनागम को जिनवाणी को ।
उद्‌बोधन करती रहती जो, भव-सिन्धु निमज्जित प्राणी को ।।

(२)

तीनों कालों—तीनों लोकों, जड़ कर्म प्रकृति, दश धर्मों का ।
रत्नत्रय, अणुव्रत, महाव्रतों, मूलोत्तर गुण, गुणथानों का ।।

सब चौदह जीव समासों का, कुलकोटि मार्गणा, गतियों का ।
संज्ञाओं, योनि, कषायों का, अनुयोगों का, परणतियों का ।।

हो नमस्कार जिन प्रवचन को, जैनागम को जिनवाणी को ।
उद्‌बोधन करती रहती जो, भव-सिन्धु निमज्जित प्राणी को ।।

(३)

सद्‌दर्शन ज्ञान चरित्रों का, द्वादश तप अनुप्रेक्षाओं का ।
अंगों का चौदह पूर्वों का, उत्सर्पिणि अवसर्पिणियों का ।।

कुलकर तीर्थंकर नारायण, प्रतिनारायण बलभद्रों का ।
चक्रीशों का नव नारद का, एवं एकादश रुद्रों का ।।

हो नमस्कार जिन प्रवचन को, जैनागम को जिनवाणी को ।
उद्‌बोधन करती रहती जो, भव-सिन्धु निमज्जित प्राणी को ।।

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये नमः महार्घ्यम् नि० स्वा०

अथ आवश्यकापरिहाणि भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

समता-वन्दन-प्रतिक्रमण-स्तुति-प्रत्याख्यान ।
कायोत्सर्गी-ध्यान को, षड् आवश्यक जान ।।
षड् आवश्यक जान महामुनि इनको पालैं ।
आवश्यक परिहाणि भावना स्वयं सम्हालैं ।।
जल-चन्दन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप फल ।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज-तल ।।

ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नमः

यहाँ पर इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये। पश्चात्—

ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये फलम् नि० स्वा०

यदि पृथक पृथक द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वा० पढ़कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।

आवश्यकापरिहाणि भावना-जयमाला

(१)

पर द्रव्यों से जड़ कर्मों से, मैं राग-रंग से न्यारा हूँ।
मैं हूँ अखण्ड चैतन्य पिण्ड, बस देखन जाननहारा हूँ॥
सत् ज्ञान मात्र चिन्मय निजातम का ऐसा अनुभव करना ही।
निश्चय आवश्यक कहलाता, आतम को भिन्न सुमरना ही॥
समता वंदन स्तुति एवं प्रतिक्रमण औ प्रत्याख्यानी।
कायोत्सर्ग छह आवश्यक व्यवहार्य करें मुनिवर ध्यानी॥

(२)

निश्चय आवश्यक अन्तरंग, जितने अंशों में होता है।
उतनी ही शुद्धि आत्मा की, परणति में जीव सँजोता है॥
उस शुद्धि समानान्तर बाहिर, जो शुभ आवश्यक होते हैं।
वे पुण्याश्रव के कारण हैं, पापों को जड़ से खोते हैं॥
निश्चय आवश्यक पालन से, संवरण निर्जरा मुक्ति कही।
व्यवहार्य और अनिवार्य बाह्य, उनकी सहचारी शक्ति कही॥

(३)

शुभ के प्रति राग नहीं होवे, अशुभों के प्रति भी द्वेष नहीं।
ऐसा मैं समता भाव धरूँ, हो हर्ष-विषाद न लेश कहीं॥
त्रैसन्ध्य करूं जिनवर वंदन, जो काटे पापों के बन्धन।
स्तवन करूँ परमेष्ठी का, गत अपराधों का प्रतिक्रमण॥
आगामी फिर अपराध न हों, इसलिए सुप्रत्याख्यान करूँ।
तन-मन प्राणों की ममता तज, 'कायोत्सर्ग निज ध्यान धरूँ॥

(४)

मुनि बन कर ये छह आवश्यक, पालूँ निश्चय व्यवहारों के।
उसके पहले छह आवश्यक, साधूँ श्रावक आगारों के ॥
जिनवर पूजा गुरु की सेवा, स्वाध्याय संयमन तप धारूँ।
अभ्यास करूँ दिन-दिन इनका, मुनि धर्म अनन्तर विस्तारूँ ॥
निश्चय आवश्यक मुनियों के, गृहस्थों के आत्म स्वरूपी हैं।
व्यवहारतया छह आवश्यक, उनके साधक अनुरूपी हैं ॥

ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति आवश्यकपरिहाणि भावना पूजा समाप्ता

●

अथ सन्मार्ग प्रभावना-भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

अभिषेकोत्सव जिन-भवन, जिन-पूजा जिन-गान।
नृत्य-गीत वादित्र युत, जिनवाणी व्याख्यान ॥
जिनवाणी व्याख्यान आदि भू-पर करावना।
यही एक सन्मार्ग प्रसारण की प्रभावना ॥
जल चन्दन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप फल।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज नल ॥

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै नमः

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप्य देना चाहिये पश्चात्—

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै चंदनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै पुष्पम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै नैवेद्यम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै दीपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै धूपम् नि० स्वा०

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै फलम् नि० स्वा०

नोट : यदि पृथक पृथक अष्ट द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै अर्घ्यम् नि० स्वा० पढ़कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये।

●

सन्मार्ग प्रभावना-भावना-जयमाला

(१)

अभिषेक महोत्सव अनुष्ठान, पूजा विधान जिनबिम्बों का।
कल्याणक मंगल प्रतिष्ठान, गजरथ विमान जिनबिम्बों का॥
पर्वाराधन व्रत-उद्यापन, अतिशय महान् जिनबिम्बों का।
आष्टान्हिक सोलह कारण पर, शुभ नृत्य-गान जिनबिम्बों का॥
सोल्लास इन्हें सम्पन्न करूँ, छाये प्रभाव जिन-शासन का।
जिससे पाया भी खिसक जाय, मिथ्या मत के सिंहासन का॥

(२)

संस्कृति समाज की रक्षा में, तन-मन-धन-जन अर्पण करदें।
जिन धर्म कर्म की शिक्षा में, दीक्षा में अनुशासन भरदें॥
तीर्थाधिकार जीर्णोद्धार, शालाएँ शिविर प्रभावक हों।
जो भेद ज्ञान विज्ञान कला, तत्त्वों में परम सहायक हों॥
सोल्लास इन्हें सम्पन्न करूँ, छाये प्रभाव जिन शासन का।
जिससे पाया भी खिसक जाये, मिथ्यामत के सिंहासन का॥

(३)

जिन प्रवचन एवं तत्त्वज्ञान, सम्मान जैन विद्वानों का।
युगवाही रुचिकर व्याख्यान, निर्माण धर्म संस्थानों का ।।
सद्देव शास्त्र गुरु विनय भक्ति, सद्दर्शन ज्ञान चरित्र रखूँ।
आदर्श उपस्थित स्वयं करूँ, व्यक्तित्व कृतित्व पवित्र रखूँ ।।
सोल्लास इन्हें सम्पन्न करूँ, छाये प्रभाव जिन शासन का।
जिससे पाया भी खिसक जाये, मिथ्यामत के सिंहासन का ।।

(४)

पाखण्ड रूढ़ियों का खंडन, हिंसा असत्य का उन्मूलन।
चैतन्य क्रान्ति का उद्बोधन, सुख शान्ति मुक्ति का अनुशासन ।।
शुभ-अशुभ राग का प्रतिबन्धन, प्रतिपादन वीतरागता का।
सच्ची प्रभावना कहलाती, संस्थापन रत्नत्रयता का ।।
सोल्लास इन्हें सम्पन्न करूँ, छाये प्रभाव जिन-शासन का।
जिससे पाया भी खिसक जाये मिथ्यामत के सिंहासन का ।।

ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति सन्मार्गप्रभावना-भावना पूजा समाप्ता

अथ प्रवचन वत्सलत्व-भावना-पूजा

(कुंडली छंद)

सदाचारिता शील के, मूर्तिमंत चारित्र।
मुनि श्रावक सार्धमिजन, मन वच काय पवित्र ।।
मन-वच-काय पवित्र, संत पर हो वत्सलता।
है "प्रवचन वात्सल्य" भरी जिसमें निश्चयता ।।

जल चन्दन वनशालि पुष्प चरु दीप धूप फल।
युक्त अर्घ्य ले करूँ समर्पित चरणाम्बुज तल ॥

ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नमः

यहां इस मंत्र से १०८ बार जाप देना चाहिये पश्चात्—

ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय जलम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय चन्दनम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय अक्षतम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय पुष्पम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नैवेद्यम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय दीपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय धूपम् नि० स्वा०
ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय फलम् नि० स्वा०

नोट : यदि पृथक पृथक द्रव्य न चढ़ाना हो तो—

ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय अर्घ्य नि० स्वा० पढ़ कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये।

●

प्रवचन वत्सलत्व-भावना जयमाला

(१)

साधर्मी एवं सन्मार्गी या कारुणिकों पर प्रीत रहे।
सद्देव शास्त्र गुरु भक्तों पर, निःस्वार्थ अटूट प्रतीत रहे ॥
ममता विहीन वात्सल्य रहे, आत्मीय तुल्य व्यवहार रहे।
अष्टांग सहित सम्यक्त्व रहे, वसुधैव महा परिवार रहे ॥

वात्सल्य भावना पराकाष्ठा है व्रत सोलह कारण की ।
तीर्थंकर पुण्य प्रकृति बँधती, भव-सिन्धु तरण की तारण की ।।

(२)

वात्सल्यमयी व्यवहारों से, जीवन जिसने कृत्कृत्य किया ।
निःश्रेयस एवं अभ्युदयी, वैभव ने आकर नृत्य किया ।।
यह आत्मीयता वत्सलता, जीवन में अंगीकार करूँ ।
इस मोहमयी ममता वाली, दुनियाँ का कब प्रतिकार करूँ ।।
वात्सल्य भावना पराकाष्ठा है व्रत सोलह कारण की ।
तीर्थंकर पुण्य प्रकृति बँधती, भव-सिन्धु तरण की तारण की ।।

ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय महार्घ्यम् नि० स्वा०

इति प्रवचनवत्सलत्वा भावना पूजा समाप्ता

रयधू—कवि-परिचय

प्राकृत षोडशकारण तथा दशलक्षण जयमाला के कर्ता का नाम रैधू-रैयधू या रइधू है। इनके बनाये हुए आदिपुराण नाम के ग्रन्थ से जो इन्हीं जयमाला के समान अपभ्रंश भाषा में है और जिसका "मेघेश्वर चरित" नाम से उल्लेख किया गया है—मालूम होता है कि ये संघवीय (संघाधिप) हरिसिंह के पुत्र और देवराज के पौत्र थे—

णंदउ सिरि हरिसिंघ संघाहिउ, देवराज सुउ, पवर गुणाहिउ ।
जस संताणि कईसु अमच्छरु, रइधू संजायउ गुणकोच्छरु ।।
जेण चरिउ उसहेणहु केरउ, विरयउ बुहयणसुक्खजणेरउ ।।

ये माथुरसंघ पुष्करगच्छ के आचार्य यशःकीर्ति के शिष्य और गुण-कीर्ति के प्रशिष्य थे। इन आचार्यों की गद्दी गोपाचल या ग्वालियर में थी। जान पड़ता है कि उक्त कविवर ने पीछे जिन दीक्षा ले ली थी और तब उनका नाम सिंहसेन रक्खा गया था।*

आदिपुराण खेमसिंह या क्षेमराज नाम के धनिक गृहस्थ के निमित्त रचा गया था। उसकी प्रत्येक सन्धि के अन्त में आदिपुराण को "महाभव्व खेमसीलाहुणामं किए" विशेषण दिया है और एक एक संस्कृत पद्य देकर खेमसिंह का गुण कीर्तन किया गया है। यथा—

सर्वज्ञ पादार्चन सूरिदाने आभाति यस्यात्र सदैव मूर्तिः ।
चित्ते च विज्ञान कलावतारः सोनन्दताच्छ्री भुवि क्षेमराजः ।।

ये क्षेमसिंह साहु जाति के अग्रवाल थे और तोमर वंश के राजा डूंगरसिंह के राज्य में निवास करते थे। डूंगरसिंह ग्वालियर के राजा थे। उनकी रानी का नाम चंदादेवी और पुत्र का नाम कीर्तिसिंह था।

---

*जैन हितैषी भाग १३ अंक ३ में सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोर जी ने उक्त आदिपुराण का विस्तृत परिचय दिया है और अधिकाँश में उसी के आधार से यह लेख लिखा गया है। परन्तु उसमें जो रइधू को सिंहसेन का बड़ा भाई बतलाया है, सो ठीक नहीं मालूम होता। हमारे ख्याल में रइधू और सिंहसेन दोनों एक ही हैं।

क्षेमसिंह (खेमसी, क्षेमराज और खेऊसाहु) के पिता का नाम पजणसाहु, माता बील्हाही, पितामह का पुण्यपाल और स्त्री का धनश्री था। धनश्री के गर्भ से उनके चार पुत्र हुए थे—सहसराज, पहराज, रतिपति और होलू। ये चारों ही बड़े धर्मात्मा और विद्वान थे। सहसराज ने गिरनार को संघ चलाया था और पहराज को राजा ने उसकी बुद्धिमत्ता के कारण अपने पास रक्खा था। इन सब पुत्रों के भी अनेक पुत्र पुत्रियाँ थीं।

दशलक्षण जयमाला में उक्त खेमराज के ही चतुर्थ पुत्र होलू साहु का उल्लेख है—"भो खेमसिंह सुय भव्व विणयजुय होलुव मण इह करहु थिरु।" बहुत से लोग इसका अर्थ "खेमसिंह की पुत्री होली" करते हैं, सो अशुद्ध है। हमने अबकी बार इस अनुवाद में उक्त संशोधन कर दिया है।

इनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी है। जैन सिद्धान्त भवन आरा में "ज्ञानार्णव" ग्रन्थ की लेखक प्रशस्ति में लिखा है—

संवत् १५२१ वर्षे आषाढ़ सुदी ६ सोमवासरे श्री गोपाचल दुर्गे तोमरवंशे राजाधिराज श्री कीर्तिसिंह-राज्य प्रवर्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भ० श्री गुण कीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री यशः कीर्ति-देवास्तत्पट्टे भ० श्री मदाय कीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री गुणभद्र देवास्तदाम्नाये—

इससे मालूम होता है कि १५२१ में तोमर वंशी राजा कीर्तिसिंह का राज्य था और इन्हीं तोमरवंशी कीर्तिसिंह को आदिपुराण में डूंगरसिंह का पुत्र बतलाया है। इसमें गुणकीर्ति और यशःकीर्ति का भी उल्लेख है। अतः आदिपुराण इसी समय से कुछ पहले बना है; अतएव रइधू का भी समय यही समझना चाहिए।

'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता' और उनके ग्रन्थ में रइधू कवि के बनाये हुए नीचे लिखे ग्रन्थों का उल्लेख है—श्रीपाल चरित्र, प्रद्युम्न चरित्र, व्रतसार, कारण गुण षोडशी, दशलक्षण जयमाला रत्नत्रयी, मेघेश्वर चरित्र (आदि पुराण), षड् धर्मोपदेश रत्नमाला, भविष्यदत्त चरित्र, करकंड चरित्र। ये सब ग्रन्थ भी अपभ्रंश भाषा में ही होंगे, ऐसा जान पड़ता है।

श्री षोडशकारण संस्कृत-पूजा

ऐन्द्रं पदं प्राप्य परं प्रमोदं, धन्यात्मतामात्मनि मन्यमानः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या, महाम्यहं षोडश-कारणानि ।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणानि अत्रावतरत अवतरत संवौषट् । (इति आह्वाननम्)

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः । (स्थापनम्)

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणानि अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् । (सन्निधिकरणम्)

प्रथम-अष्टक

गङ्गादि तीर्थोद्भववारि पूरै,-स्तापाप हारैर्घनसार सारैः ।
तीर्थङ्करश्री सुख साधकानि, यजे मुदा षोडशकारणानि ।।१।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं नि० स्वाहा ।

रसेन सच्चन्दन जेन सार, कर्पूर गौरेण मनोहरेण ।
तीर्थङ्करश्री सुखसाधकानि, यजे मुदा षोडशकारणानि ।।२।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा ।

प्रफुल्ल कुन्देन्दुकरावदातैः, शाल्यक्षतैरक्षत सिद्धि लब्धौ ।
तीर्थङ्करश्री सुखसाधकानि, यजे मुदा षोडशकारणानि ।।३।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्त-येग्रक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कुन्दैरमन्दैः-शुचि सिन्दुवारैः, सत्पारि जातैस्सरसीरुहैश्च ।
तीर्थङ्करश्री सुखसाधिकानि, यजे मुदा षोडशकारणानि ॥४॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यः कामवाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥

पक्वान्नशाल्योदन पाय साद्यै,—नैवेद्यकैः काञ्चनभाजनस्थैः ।
तीर्थङ्करश्री सुखसाधिकानि, यजे मुदा षोडशकारणानि ॥५॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

प्रसृत्वरध्वान्त—हरैरुदारै—र्दीपैर्लसत्केवललब्धि हेतोः ।
तीर्थङ्करश्री सुखसाधिकानि, यजे मुदा षोडशकारणानि ॥६॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

धूपोद्गमा वासित दिग्विभागै, र्धूपैर्भवभ्रान्ति विनाशनाय ।
तीर्थङ्करश्री सुखसाधिकानि, यजे मुदा षोडशकारणानि ॥७॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्योदुष्टाकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

नारंगपूगीफल मातुलिङ्गैः श्रीमद्भिरामैः कदली फलैश्च ।
तीर्थङ्करश्री सुखसाधिकानि यजे मुदा षोडशकारणानि ॥८॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

भक्ति प्रव्हसुरेन्द्र संस्तुतमिदं तीर्थङ्कराणां पदं ।
लब्धुं वाञ्छति यो विचार, चतुरस्संसार भीताशयः ॥

श्रीमद्दर्शन - शुद्धिभूरि - विनय - ज्ञानव्रता - दीन्यलम् ।
भक्त्या षोडशकारणानि स नरः संपूज्य चाराधयेत् ।।६।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्योऽन पदप्राप्तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।

(अथ द्वितीयाष्टकम्)

सुवर्ण-भृङ्गार-विनिर्गताभिः पानीय-धाराभिरिमाभिरुच्चैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या, महाम्यं षोडशकारणानि ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो जलं नि० स्वा०
श्रीखण्ड-पिण्डोद्भव-चन्दनेन, कर्पूर-पूरैः सुरभीकृतेन ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यः चन्दनं नि० स्वा०
स्थूलैरखण्डैरमलैः सुगन्धैः शाल्यक्षतैः सर्व—जगन्नमस्यैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्योऽक्षतान् नि० स्वा०
गुञ्जद्द्विरेफैः शतपत्र-जाती-सत्केतकी-चम्पक-मुख्य-पुष्पैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यः पुष्पं नि० स्वा०
नवीन-पक्वान्न-विशेषसारैः, नानाप्रकारैश्चरुभिर्वरिष्ठैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यः नैवेद्यं नि० स्वा०
तेजोमयोल्लास शिखैः प्रदीपैर्दीप-प्रभैर्ध्वस्त-तमो-वितानैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र—लक्ष्म्या-महाम्यहं षोडशकारणानि ।।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यो दीपं नि० स्वा०

कर्पूर-कृष्णागुरु-चूर्णरूपैर्धूपैर्हुताशाहृत—दिव्य-गन्धैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो धूपं नि० स्वा०
सन्नालिकेराक्रमुकाम्र-बीजपूरादिभिःसारफलै रसालैः ।
दृक्शुद्धि मुख्यानि जिनेन्द्र-लक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो फलं नि० स्वा०
पानीय - चन्दनरसाक्षत-पुष्प - भोज्य, सद्दीप-धूप
फल - कल्पितमर्घपात्रम् ।
आर्हन्त्य - हेत्वमल - षोडशकारणानां, पूजाविधौ
विमल - मंगलमातनोतु ॥
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्योऽर्घ्यं नि० स्वा०

जयमाला

भव भवहिं निवारण, सोलह कारण पयडमि गुण-गण-सायरहं ।
पणविवि तित्थंकर, असुह-खयंकर केवलणाण-दिवायरहं ॥ १॥
दिढ़ धरहु परम दंसण-विसुद्धि, मण-वयण-काय-विरइय-तिसुद्धि ।
मा छंडहु विणऊ चउ-पयार, जो मुत्तिवरंगण हियहिंहार ॥२॥
अणुदिणु परिपालउ सील-भेउ, जो हत्ति हरइ संसार-हेउ ।
णाणोपजोग जो काल गमइ, तसु तणिय कित्तिभुवणयहिं भमइ ॥३॥
संवेउ चाउ जे अणुसरंति, वेएण भवण्णउ ते तरंति ।
जे चउविह-दाण सुपत्त देय, ते भोगभूमि-सुह सत्थ लेय ॥४॥
जे तव तवंति बारह-पयार, ते सग्ग—सुरहँ दह-विहव—सार ।
जे साहु समाधि धरंति थक्कु, सो हवइ कालमुहं धुवक्कु ॥५॥
जो जाणइ वेयावच्चकरण, सो होइ सव्व—दोसाण हरण ।
जो चिंतइ मणि अरिहंत देव, तसु विसय हणंतइ कवण खेव ॥६॥
पव्वयण सरिजेगुरु णमंति, चउगइ-संसारण ते भमंति ।

बहु-सुयहँ भत्ति जे णर करंति, अप्पउ रयण-त्तय ते भमंति ॥७॥
जो छह आवासइ चित्त देइ, सो सिद्ध पंच सहरत्थ लेइ।
जे मग्ग - पहावण आयरंति, ते अर्हमिदत्तणु संभवंति ॥८॥
जे पवयण-कज्ज-समत्थ हृंति, तहँ कम्म जिणिदह खवण भंति।
जे वच्छलच्छ कारण वहंति, ते तित्थयरत्तउ पुह लहंति ॥९॥
जे सोलह—कारण कम्म वियारण, जे धरंति वय-सील-धरा।
ते दिवि अमरेसुर पहुमिणरेसुर, सिद्धिवरंगण—हियहिहरा ॥१०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वा। ॥

● इति षोडशकारण संस्कृत सामान्य पूजन ●

●

प्राकृत षोडशकारण समुच्चय-पूजा

यदा यदोपवासाः स्युराकर्ण्यन्ते तदा तदा।
मोक्ष-सौख्यस्य कर्तृणि कारणान्यपि षोडशः ॥

ॐ ह्रीं कर्णिकामध्ये श्री षोडशकारणयन्त्रोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

अष्टक

पोमदहादो णिग्गय, सुरसरिसलिलेण घुसण मिस्सेण।
सोलहकारण जंतं, तेण महामीह भावेण ॥१॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडश कारणेभ्यो जलं।

सिरिखंड चंद कुंकुम, रसभरि कलिलेण कणयवण्णेण।
अच्चम्मि जंत मग्घं, विलेव यामीह जंतमवि सुद्धम् ॥२॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो चन्दनं।

ससिकिरण सारणि सुब्भहिं, अक्खय अक्खेहिं अक्खसुहहेदू।
सोलह—कारण जंतं, समच्चयामीह भावेण ॥३॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्योऽक्षतं।

मंदार कुंद चंपक, माला मालेहिं अलिख कुलाहिं ।
अचम्भिजंत मणग्घं दुग्गइगमणस्स दंसियं विग्घं ।।४।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यो पुष्पं ।

सज्जेह अज्जपक्वाहिं, चित्तपमोएहिं घेवराहिं ।
णेविज्जेहि अहंपिय दुग्गइगमणस्स कारणं अच्चे ।।५।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यो नैवेद्यं ।

कप्पूर वत्ति कलिहिं, दीपावलि एहिं दिसिपयासेहिं ।
केवलणाण कराहिं, तरणिणिहेहिं जंतमच्चेहं ।।६।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यो दीपं ।

सिल्हारस अयराइय, दव्वविमिस्सेण सरण धूवेण ।
उवयामि जतं सुहसय, सिद्धिपसिद्धीरा ।।७।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यो धूपं ।

नारंग-पुंग-चोचा, मलक कपित्थेहिं चित्तमुददेहिं ।
फलहि फलसिद्धि देहिं, अच्चमिबसुदुण कारणं महिया ।।८।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यो फलं ।

जल गंधाक्खय कुसमइ, णेवय सद्दीपधूप फलजुत्ति ।
कुसुमांजलि पुणु जुत्थमि, सुजंतरापस्स पुव्वमणिदस्स ।।९।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धचादि षोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं ।

जयमाला

णमोणमसोलह कारण जंत, णमोणिरुदंसणमत्त महंत ।
णमो भव-सायर तारण योय, णमो खयणीय जरामरणोय ।।
णमो जिणजम्मुण ओसहसार, णमो जिणदंसिय सिवहर हार ।
णमो विसयाहि रउद्ध पवीण, णमो करलंबण दाणपवीण ।।

णमो मणमक्कण बंधण पास, णमो पण इंदियदारुहु यास।
णमो मयमोह पदंसिय वेर, णमो तिजयंतह भाविय केर ।।

तुम विणु आसिभवण्ण विखिण्णु, अणंतह दुक्खहिं भव भव भिण्णु।
अहो वय सोलहकारण सामि, पयेणहि मज्झजि सासय ठाण ।।

ॐ ह्रीं षोडशकारण यन्त्राय जयमालार्घ्यं नि० स्वाहा ।।

षोडशकारण जयमाला समाप्ता

(१) दर्शनविशुद्धि भावना-पूजा

असत्य सहिता हिंसा मिथ्यात्वं च न दृश्यते ।
अष्टाङ्गं यत्र सम्यक्त्वं दर्शनं तद् विशुद्धये ।।१।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धये नमः

जलादिफलपर्यन्तम् अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ।।

घत्ता

पंचमगइकारण दुगइणिवारण, पणदह कारण कारणु।
भावहु भवियह मणि भवदुहतममणि दंसणविसुद्धि भवियह सरणु ।। १।।

संका-कंखा विदि गंछचित्त। दंसण विशुद्धि पावन पवित्त।
णिम्मूढत्ते उवगूहणेण । ठिदिकरणे वच्छल्ले गुणेण ।।२।।

सुपहावणाय दंसणविसुद्धि । मूढत्तय वज्जियताह सुद्धि।
छब्भेय अणायदणाण चाय। दंसणविसुद्धि वज्जिय पमाय ।।३।।

णव जीवहु जाइ सहाउ होइ। कम्मह परिणइ इह भहिण जोइ।
बउलपि चंडाल कुलेणचुत्तु। सुगहिं गउ कुलहुण गव्वजुत्तु ।।४।।

ईसत्तु चउग्गइ भमण हेउ । णिग्गंथ तिलोयहु होइ भेउ ।
रूबउ सरूप भावहु बिहाण । तह गव्बुकरइ किह मुणिपसाण ।।५।।

सुउ जाणंतिवि सिज्भइण भव्ब । एयादशांग तह कवण गव्ब ।
दंसण वज्जिय तउ अहिलु जेणि । तब गव्बुण किज्जय भव्वतेण ।।६।।

कम्मारि जिणिज्जहिं जिहिं बलेण । तह गव्ब जुत्त णउ किय मलेण ।
जेहिं जि विण्णाणइ भवि भमेइ । अप्पउ चउगइ जोणिहि दमेइ ।।७।।

ते सयलु जिकुविणाणय हवन्ति । तह गव्वण मणि मुणिवर वहंति ।
पणवीस दोस बज्जियति सुद्ध, भाइय परम दंसण विसुद्ध ।।८।।

(घत्ता)

दंसण विसुद्धि पढमंगउ जि । पूज करेप्पिणु दुरिय महू ।
अग्घु जि उत्तारइ थुइ सहिय, सो सम्माणइ सिद्धि बहू ।।९।।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयै महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।

इति दर्शनविशुद्धि भावना पूजा समाप्ता ।

●

(२) विनय सम्पन्नता भावना-पूजा

दर्शन-ज्ञान - चारित्र - तपसां यत्र गौरवम् ।
मनोवाक्काय संशुद्धया सा ख्याता विनयस्थितिः ।।१।।

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः

जलादिफलपर्यन्तम् अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ।।

(घत्ता)

दंसण णाण चरण विणऊ । तव गुण विसुद्धह भव दलणु ।
सहु भत्तिए महियलणिहिवि सरु । किज्जह दुह बण खय जलणु ।।१।।

●

विणउवि भवतरु जालणु किसाणु। विणउजि तिलोय मज्झह पहाणु।
विणउवि जिणसासण सयलमूल। विणउजि मिच्छाइट्ठियहिं सूल ।।२।।

विणए विणु माणुस चम्मरुक्ख। माणग्गिय डज्झिवि सहइ दुक्ख।
तं विणउ देव गुरु सत्थ होइ। दंसण णाणहु विभणंति जोइ ।।३।।

चारित्त विणउ संजम सराउ। अप्पाण विणउ भावहु अभाउ।
णउरायदोष गंजियइचित्तु। भाविज्जइ खणि खणिजिउ चिमित्तु ।।४।।

मा चउ गइ भमय विशुद्धजीव। जहिएरिस चिंतइ भव्वजीव।
तं णिच्चय बिणउ पउत्तु एहु। सिवणयर पंथ संबल मुणेहु ।।५।।

(घत्ता)

विणए विणु घडिय मजाउ महु। इम भणंति विणयंगु णरु।
जो महिवि अग्घु उद्धरइ इहु। सो धारहि सिव रमणि करु ।।६।।

ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वा० ।।

●

(३) निरतिचार शीलव्रत भावना पूजा

अनेक - शील - सम्पूर्ण, व्रत - पंचक - संयुतम्।
पंच विंशति - क्रिया यत्र, तच्छीलव्रतमुच्यते ।।१।।

ॐ ह्रीं निरतिचारशीलव्रताय नमः

जलादिफलपर्यन्तम् अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम्।

(घत्ता)

दुग्गइ दुह हारणु सुहगइ कारणु। जीवउ तव वय संजमह।
सीलंगु तञ्ज पालहु णमहु। मणु पवंगु चञ्चल मदह ।।१।।

●

अइयार विवज्जिउ शुद्ध शीलु। पालहु खंचहु णिरु चित्तपीलु।
माणुस देवी तिर्यंच णारि। छंडज्जइ मण वयतणु बयार ।।२।।

आप्पणु असीलु कहवणु चलेइ। अणुहू णउ उवयेसं कलेइ।
अवरहु कीरन्तहु कुणइभीउ। णउ अणु मोयइ थुणु भव्वजीउ ॥३॥
अवला बाला पैच्छन्त सन्त। पुत्तीव वियाणइ मण महन्त।
जोवण करिन्द आरूढ मूढ़। लायण्ण सलिल सव्वंग गूढ़ ॥४॥
सम वयस णिये विणसस समाण। मण्णइ ण करइ सम्माण दाण।
सीलेतियसेसर पय णमंति। सीलेसिवउरणिब्भय गमंति ॥५॥
सीलेणलंकिउ विगयरूउ। णउ कुहउ विमोहइ सुक्ख भूऊ।
मयणावियारु पुण सील चत्तु। त्थुत्थुकारिज्जइ सोणिरुत्तु ॥६॥
जं किय पयज्ज वय तबहु किंपि। अखिलिय पालिज्जइ भव्व तंपि।
तं पुणु भणंति सीलुजि रसीस। ससरूबहू खिसइरा गुरु गरीस ॥७॥

(घत्ता)

सीलं सहु थोवउ पवरु फलु। णिप्फलु बहु बउ तेण विणु।
इमि मुणि वितंजि सीलंग वरु। पुज्जहु अग्घइ तीस दिणु ॥८॥

ॐ ह्रीं निरतिचारसीलब्रताय नमः महार्घ्य नि० स्वा०

(४) अभीक्षणज्ञानोपयोग भावना-पूजा

कालो पाठः समध्यानं शास्त्र चिन्ता गुरौनतिः।
यत्रोपदेशना लोके शास्त्र - ज्ञानोपयोगता ॥१॥

ॐ ह्रीं अभीक्षण ज्ञानोपयोगाय नमः

जलादिफल पर्यन्तं अष्ट द्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम्।

(घत्ता)

अभीक्खण णाणो उग्गुणो। अष्ट पयारहिं महि महि वि।
पुणु अग्घुत्तारिज्जय विमलु। कुसुमांजलि अग्गयरिव विवि ॥१॥

जं खण खण चेयणु भाविज्जइ। तंज्जि अभीक्खण णाण मुणिज्जइ।
अहवा जं सु यत्थ अब्भासो। णिय सिस्साणं पुर उब्भासो ॥२॥
वक्खाणइ विरत्त चित्तंतरि। भावइ भावत्थो भावन्तरि।
एहुविणाणो उग्गु पहिल्लउ। फेडिय विसयकसाय तिसल्लउ ॥३॥
णाणाब्भासे मुणिथिरु थक्कइ। णाणंगे वियप्प गणु लुप्पइ।
णाणाब्भासे सासण वड्ढइ। णाणाब्भासे असुहो हट्टइ॥
णाणाब्भासे सुपहावण गुण। णिच्चय बट्ठइ दलिय दुरियरिण ॥४॥

(घत्ता)

इय गुणहिं अलंकिउ अंगुवरु। तुरिउ समच्चिवि अग्घु लई।
उत्तारिय गेहत्थ जिसधणु। भावइ समणुगि हत्थ जई ॥५॥

ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः महार्घ्यं नि० स्वा०

(५) संवेग भावना-पूजा

पुत्र मित्र कलत्रेभ्यः संसारविषयार्थतः।
विरक्तिर्जायते यत्र स संवेगो बुधैः स्मृतः ॥१॥

ॐ ह्रीं संवेगाय नमः

जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम्।

(घत्ता)

वसुविह दव्वइ संवेइ गुणु। पुज्जइ कणयथाल धारिवि।
अग्घुत्तारिज्जइ वयजु एण। भत्तीए कुसुमंजलि करवि ॥१॥

जिण भासिय दहलक्खण सधम्म। रयणत्तय लक्खण विगय छम्म।
सायारणयारय जो पहाण। दय जुत्ति वियंभिव जीवताण ॥२॥

ए रिसयधम्म जहं होउ राउ। संवेउ तंजि पभणय विराउ।
अहवत्थु सरु उपसत्थ धम्मु। केवल दंसण णाणेणरम्मु ॥३॥
तह रत्तु चित्तु संवेउ सिट्ठु। तहफल भाविज्जइ अइविमिट्ठु।
हरिपडिहरि हलहर चक्कणाह। तित्थयरमुंडकेवलि अवाह ॥४॥
अभियासणु सुरवर तह सुरेस। अहमिदालय वासिय विसेस।
एरिस हवंति धम्महु फलेण। परभव आराहियणिम्मलेण॥
जिहि मोउ विहिज्जइ तह फलम्मि। तं पुण संवेउवि धरे मणम्मि।५॥

(घत्ता)

साहम्मिय जणि मोउ। भोयभाव चइ ऊण-णरु।
तं संवेउ पणंगु गुणु। अग्घुत्तारय दुरयहरु ॥६॥
ॐ ह्रीं संवेगायनमः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

●

(६) शक्तितस्त्याग भावना-पूजा

रत्नत्रय समाधारे, पात्रे दानं चतुर्विधं।
स्व शक्तया विद्यते यत्र, स त्यागो विबुधैः स्मृतः ॥१॥
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम्।

(घत्ता)

चाउवि सुपसित्थउ छट्टभऊ। अंगु समुच्चिवि भत्तिय ए।
तह उत्तारिज्जइ अग्घु पुणु। हणिवि तूर सम सत्तिय ए ॥१॥

●

दो विह परिगह छंडेण चाउ। सकसायंदिय दंडेण चाउ।
चऊवि हवेइ रस चाइणेण। चाऊवि हवेइ अज्जायणेण ॥२॥
चाउवि मण जाइवि अघणासि। चाउवि हवेइ मोहउ विणास।
जं धम्मक्खाणु कहेइ साहु। सावय पुरहु कय सुगइ लाहु ॥३॥

तं चाउवि जाणिज्जइ जणेहि । पालिवउणिरु मुणिवर गणेहिं ।
उत्तम मज्झिम जहण्ण याहं । जिण समयभणियाति पत्तयाहं ॥४॥
ग्राहार पमुह चउदान ताहं । दिज्जइ भत्तिय गुणगण जुयाहँ ।
दुहियं दिज्जइ ग्रणु कंपणेण । तं चाउ होइ विकसिय मुहेण ॥५॥

(घत्ता)

चाए विणु मंदिरु तेउवणू । पुरि सुवि मडिय सरित्थउ ।
गिद्धो वम पुत्त कलत्तंठिया । खंति धणामिसु णिच्छउ ॥६॥
ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः महार्घ्यं नि० स्वा० ।

●

(७) शक्तितस्तप भावना-पूजा

तपो द्वादशधा प्रोक्तं बाह्यभ्यन्तर भेदतः ।
स्वशक्तया क्रियते भव्यै. स्वर्ग मोक्ष फल प्रदम् ॥१॥
ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः
जलादिफलपर्यन्तं ग्रष्टद्रव्यैर्पूजयेत् ग्रर्घ्यम् ॥

(घत्ता)

घर ग्रास पास छिंदण फरसु । देह सुक्खाणण्णासउ ।
कोवीणइवच्छहु चयणां । तं तउ कार दिव्वासणउ ॥१॥

●

तं तउ जहिं तवभरि दमिय अंग । तं तउ जहिंणिरु सो सिउ ग्रणंग ।
तं तउ जहिं दो विह णत्थि संग । तं तउ जहिंइंदियविसय भंग ॥२॥
तं तउ जहिं गिर कंदर णिवास । तं तउ जहिंइच्छिय जलणगास ।
उवसग्गागमि कम्पइण जंजि । तवयरन अंग भासियउ तंजि ॥३॥
णिज्जरइ चिरज्जिय कम्मदुट्ठ । कासोवर राउ न बुद्धि दुट्ठ ।
महव्वय पण पालणु समिदि पंच । पालणु रोहण इंदियहि पंच ॥४॥

सिर केसह लुंचणुणिय करेण । छावासइ जुंजइ णियखणेण ।
णाग्गउ विपुलइ तिहुं काल लोइ । आजम्मुवि अहणाणत्त होइ ॥५॥
भूसयण जोय गिद्धा सवेइ । दंतव णवि अंगुलिणउ खिवेइ ।
ट्ठिदि भोयणु मौणय इक्कवार । भुंजइणीरस विसयावहार ॥
ए रिस तउजइ महणीय होइ । केवल पावइ ते परम जोइ ॥६॥

(घत्ता)

तउ पुज्जवि अज्जिविधम्म गणु । अग्धुत्तारिवि करविथुई ।
जे सिव कामणि दुरंतरिया । एवहिं तुह्महिं करइरई ॥७॥

ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः महार्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा ।

(८) साधु-समाधि-भावना पूजा

मरणोपसर्ग-रोगादिष्ट वियोगादनिष्ट संयोगात् ।
नभयं यत्र प्रविशति साधु - समाधि स विज्ञेयः ॥१॥

ॐ ह्रीं साधु समाधये नमः

जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ॥

(घत्ता)

साहु समाहि अंतकालहि ।
पुणु मग्गिज्जइ पसिद्धिया ॥
जम्म - जरा मरण भमभीयह ।
णरेण गुणेण रिद्धिया ॥१॥

भवि भवि णव णव गहियह अंगइ ।
भवि भवि जायइ सयण पसंगइ ॥
भवि भवि रज्ज-रिद्धि संजाया ।
भवि भवि जणणि जषणु सुहदाया ॥२॥

भवि भवि णारित्तणु संपत्तउ ।
भवि भवि संठबि मयण पलित्तउ ।।
भवि भवि माणु सन्ति उपण्णउ ।
भवि भवि दुहिउ विसुह संपण्णउ ।।३।।

भवि भवि णारयणवि संमज्जउ ।
भवि भवितिरिय गईहिं पुणुभज्जिउ ।।
भवि भवि णरु मिच्छत्तिउ जायउ ।
भवि भवि सग्गलोउ सपायउ ।।४।।

भवि भवि जिणपुज्जिउ गुरु वंदिउ ।
भवि भवि छम्मिय अप्पउणिंदिउ ।।
भवि भवि दुद्धर तउ आयरियउ ।
भवि भवि समवसरण संचारिउ ।।५।।

भवि भवि बहु सुयंगु अब्भासिउ ।
तहवि अणंतकाल भववासिउ ।।
विणु सद्दंसणेण अकियत्थइ ।
सयलहि होय जइवि सुपसित्थइ ।।६।।

णत्थि अपुव्व किंपि भुविणंतरि ।
साहुसमाहि होउ एत्थंतरि ।।
रयणत्तय हुलद्धिपुणु बोही ।
परगहणेय अविग्घ समाही ।।
साहु समाहि साजि जिण भासइ, चउगइ गमण एउणिण्णासइ ।।७।।

(घत्ता)

अट्ठमि अंगहु इयथुइ भणिवि । अग्घु समुत्तारइ जणरु ।
सोभव सायरु हेलय तरिवि, हवइ अट्ठगुण सेणि धरु ।।८।।

ॐ ह्रीं साधुसमाधये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।

(९) वैयावृत्य भावना-पूजा

कुष्टोदर - व्यथाशूलैर्वातपित्त शिरोर्तिभि: ।
कासश्वासजरारोगै: पीडिता: ये मुनीश्वरा: ।।१।।

तेषां भैषज्यमाहारं शुश्रूषा पथ्यमादरात् ।
यत्रैतानि प्रवर्तन्ते वैयावृत्यं तदुच्यते ।।२।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नम:
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ।।

(घत्ता)

तवतत्तहं रोयजुयगत्तहं । वट्टहणिय विवेयणम् ।
ओसह पच्छुत्ताहं विरइज्जइ । तं गुणुणवमु सोहणं ।।१।।

●

दहविह वैयावच्चु विहज्जइ । गणगलाण आइय भाविज्जइ ।
वइयावच्चुवि ओसह दाणइ । किज्जइ जइ पुँगमह पहाणइ ।।२।।
वइयावच्चु तंजि आहारइ । जुत्ति दिज्जइ देहाधारइ ।
वइयावच्चुवि अवगुण झंपणु । सद्दिट्ठिय किज्जइ थिरथप्पणु ।।३।।
तह भट्ठवि पुणु सुपह ठविज्जइ । वइयावच्चु सोजि पभणिज्जइ ।
जं सुयंगु पाढइ गुरु सिस्सह । सीसुवि सेवइ पाइ रिसीसह ।।४।।
जंभाइज्जइ चेयण तच्चो । तं पि मुणिज्जइ वैयावच्चो ।
रायाइय दोसह परिहरणे । आसिजाय कम्मसव हरणे ।।५।।

(घत्ता)

वइयावच्चु जगुत्तमुजि । एह जिनंदह वुत्तउ ।
जो करहि उवासय अहसवणु, सो सिव लहइ णिरुतउ ।।६।।

ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नम: महार्घ्यं निर्व० स्वाहा ।

●

(१०) अर्हद्भक्ति भावना-पूजा

मनसा कर्मणा वाचा जिन - नामाक्षरद्वयम् ।
सदैव स्मर्यते यत्र सार्हद्भक्तिः प्रकीर्तिता ॥१॥

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ॥

(घत्त)

अरहंतह पूया भत्तिकरि अणुत्तारउ एहुपुणि ।
कुसुमंजलि हत्थहु खिविवि, भावहि माणुसुतासु गुणु ॥१॥

●

चउघाइ कम्मखय अरुह होइ । केवल लोयणुतिजयन्त जोइ ।
समवसरण सिउभूसिउ सराउ। जसुपभणहिं सुर जय जय णिणाउ ॥२॥
जसु पाडिहेर अट्ठेव संति । मंगल विअट्ठ चउ पास ठंति ।
णइंद णरिंद सुरिंद पायु । जसु पणवह अहणिसिवद्धराय ॥३॥
दह अट्ठदोस वज्जिय हयार । सो अरुहुय पुज्जहु सोक्खयार ।
तह थुइ विरइज्जइ कर पणामु । भावहु सो मणि रवि कोड़िधामु ॥४॥
अर्हंतभत्ति किज्जय जणेण । पुज्जिज्जय पणमिज्जय सिरेण ।
अर्हंतभत्ति जवसिंधुतार । अर्हंतभत्ति णरया पहार ॥५॥

(घत्ता)

अर्हंतभत्ति दह मंगहुजि, अणुत्तारउ एहुणिरु ।
जिहिं सुरणर सुक्खइं, अणुहविवि पुणुपउ पावइ अखउणिरु ॥६॥

ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये नमः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

●

(११) आचार्यभक्ति भावना-पूजा

निर्ग्रंथ - मुक्तितो भुक्तिस्तस्य द्वारावलोकनम् ।
तद्भोज्यालाभतो वस्तु - रसत्यागोपवासता ॥१॥

तत्पाद - वंदना पूजा प्रणामो विनयोनतिः ।
एतानि यत्र जायन्ते गुरु भक्तिर्मता च सा ॥ २॥
ॐ ह्रीं आचार्यभक्तये नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ।

(घत्ता)

आयरिय गुणायर तव धरहं । पुज्जिवि अग्घुत्तारियइ ।
भाविज्जइ माणसि ताह गुणु । कर कुसुमंजलि धारियइ ॥१॥

छत्तीस महागुण संजुयाह । पंचाचारा रोहण पराह ।
णिग्गंथ मग्ग गच्छण पराह । मासेक पक्ख भुत्तीयराह ॥२॥

आवासिय गिर कंदर वणाह । णिच्चल सज्झाण धारिय मणाह ।
दिक्खा सिक्खा विहि णिवुणयाह । जुत्तिए पवियाणियणवणयाह ॥३॥
काउसग्गे अहणिस ठियाह । संसार कूपणि वडण भयाह ।
मण वय तणुसुद्धी करि विताह । णसग्गिठविय लोयण जुयाह ॥४॥
महि मंडल धारवि उत्तमंगु । वंदणु किज्जय णावेवि अंगु ।
तहिपाय पोमभवरेण चित्त । वसु दव्वहि पुज्जिजय पवित्त ॥५॥

(घत्त)

इय थुइ पभणंत अग्घु कुणंतउ । पणमंतउणरु सुह लहई ।
णिद्दलि विभवावलि फेडिप्पिणु, कलिवीय राउ रारि मुसुकहई ॥६॥
ॐ ह्रीं आचार्य भक्तये नमः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(१२) बहुश्रुतिभक्ति भावना-पूजा

भव-स्मृतिरनेकान्त - लोकालोक - प्रकाशिका ।
प्रोक्ता यत्रार्हता वाणी वर्ण्यते सा बहुश्रुतिः ॥१॥
ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तये नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ॥

(घत्ता)

ये बहु सुयधारहु अंग सुसारहु, अग्घुत्तारहु विणयणुया ।
ते सत्त महण्णउ वज्जिय दुण्णउ, उत्तरंत्ति रयधूयणुया ।।१।।

जे अंगइ पुव्वययण्णयाइ । सुयपढइ जिणयम बण्णयाइ ।
तह अण्णह पाठावंत भव्व । ते बहु सुयणाहे भणिय सव्व ।।२।।
तह भत्ति कहिय बहु सुत्थभत्ति। पविणासिय जाय भवस्स थित्ति।
सासत्थ भत्ति जहिं पढइ सत्य । ससत्थ भत्ति जहिं कहइ अत्थ ।।३।।
लेहा विज्जइ णियकर लिहेण । सोहइ अक्खर मत्ताणि हेण ।
पुट्ठेहिंठवय पट्टं वरेहिं । पत्थाइय सुयजणमण हरेहिं ।।४।।
पट्टमय डोरि यत्तरिय एहिं । बंधिज्जइ हरिसिय जण मणेहिं ।
वर कणय घडिय कुसुमहिं स एहिं । पंचविह रयणगण जड़िय एहिं ।।
जं किज्जइ सत्थह पूयसार, सासुयभत्ति संसयणिवार ।।५।।

(घत्ता)

इह अग्घु पवित्तउ सुविहि पज्जतउ । सुयणाणउ उत्तारियई ।
विसयहं जंत्त उ मणु थिर रक्खिवि खणु । पुणु पुणतंजि वियारिमई ।।६।।
ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तये नमः महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।

(१३) प्रवचन भक्ति भावना-पूजा

षट्-द्रव्य-पंच-कायत्वं, सप्त-तत्त्वं नवार्थता ।
कर्म - प्रकृति - विच्छेदो, यत्र प्रोक्तः स आगमः ।।१।।
ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तये नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् नि० स्वाहा ।।

(घत्ता)

पवयण दीवेण करट्ठियेण । तिजय भवण मुह मेइ रई ।
सुपविच्छइ पेच्छिय मुणिवरेण । चेयणइ गुणभर धरई ॥१॥

●

पवइण जिण आयमुय भणिज्जइ । जुत्त काल पभणेंहि पढिज्जइ ।
णवय यत्थ छह दव्व सतच्चइं । ताह भेय पज्जाडं सव्वइं ॥२॥
कालत्तय सरूउ लोयत्तउ । कम्म पयडि धम्मु विरयणत्तउ ।
सावय महव्वयाह गुण किरियउ । गुण ठाणहि भेयइ अब हरियउ॥३॥
भूयगाम मग्गण जीवउ लइ । कुल कोडिउ जोणिउ तह सयलइ ।
चारि णिओय सुचा रसणा गुण । चउ कसाय भेयइ चउगइ पुण ॥४॥
दंसण णाण चरित्ता परणइ । दो दह अणु बेहा उवि सरणइ ।
बारह तव बारह पुण अंगइ, अंग पुव्व बहिरंग पसंगइ ॥५॥
सप्पिणि उवसप्पिणिउ विकुलयरि । तित्थंकर हरि पडिहर हल हरि ।
एव माइ जहि सयलुजि उत्तउ । तंजिण आयमु होय णिरुत्तउ ॥
तासु भत्ति किज्जइ पण मिज्जइ । थोत्त सहेय थुती विरइज्जइ ॥६॥

(घत्ता)

तं पवयण अंग भत्ति भणउ । दोस सहासह णिरस्सणु ।
अग्घुत्तारिवि तं झाइज्जय । जिम दिढ़ होइ सुदंसणु ॥७॥

ॐ ह्रीं प्रवचनभक्त्यै नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

●

(१४) आवश्यकापरिहाण भावना-पूजा

प्रतिक्रमण तनूत्सर्गौ, समता - वंदना स्तुतिः ।
स्वाध्यायः पठ्यते यत्र तदावश्यकमुच्यते ॥१॥

ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ।

(घत्ता)

देहा उत्विभिणउ णाणत्तणु । कम्मरहिउ चिमुत्त जिउ ।
येयंगाइं तह भायंतुज्जइ । पावइ अक्खउ परमपउ ॥१॥

●

अह जइ णियविअप्प अप्पा गुण । माणुण चिहुट्ठइ ता तव धर मण ।
छावासउ किरिय उ परिपालउ । असुहासउ आवंतउ खालउ ॥२॥

राय दोस सुह असुह विरत्तउ । समया भाव करय सुपवित्तउ ।
करय तियाल जिणिदह वंदणु । असुहास तरु सेणि णिकंदणु ॥३॥

गुरु भत्तीय करिवि पणमिज्जय । पवरथुई हिं जिणुह थुइकिज्जय ।
अट्ठविहिय कम्मह विणिवारणु । पडि कमणउ जम्मंवुहि तारणु ॥४॥

आगामिय कम्मासव रुधणु । पच्चक्खाणुवि सुगइणि बंधणु ।
तणुसग्गो लंबियकरु भावय । विगइ रूउ अप्पाणउ भावय ॥
इहु आवस्सय अंगु महिज्जइ । कुसुमंजलि सहु अग्घु विदिज्जइ ॥५॥

(घत्ता)

गुरु देव पुज्ज सज्झाय पुर्णु । संजम तउ दाणेसहिउ ।
गेहट्ठियांह छावासयजि । पालिज्जइ भव्वे सहिऊ ॥६॥
ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

●

(१५) सन्मार्गप्रभावना भावना-पूजा

जिनस्नानं श्रुताख्यानं, गीतं वाद्यं च नर्त्तनम् ।
यत्र प्रवर्त्तते पूजा, सा सन्मार्ग प्रभावना ॥१॥
ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ॥

(घत्ता)

जिण मग्ग पहावणु पणदहमउ । अंगु वितिजय मणिट्ठउ ।
पूजिज्जइ झाइज्जइ मणहं । एहु जिणंदह सिट्ठउ ॥१॥

जिणहु णव्हण सुमहोच्छउ किज्जिइ । पुणु पुज्जा अच्च जिण किज्जइ ।
णाचिज्जइ पुलइय मणकाये । गाइज्जइ जिण गुण अणुराये ॥२॥

अट्ठाइय रयणत्तय पव्वहिं । एम महोच्छउ किज्जय सव्वहिं ।
तजि पहावणंगु सुह सासउ । कुणय पक्ख मणं पय णियतासउ ॥३॥
सुयवक्खाण मग्गु चलावइ । घोरुवीर तउ जण दंसावइ ।
एह पहावणा वि गुरुयारी । किज्जइ दुग्गइ पह अवहारी ॥४॥
जिण पयट्ठ जिण मंदिर करणे । अंड सिहर किंकिणि धय धरणे ।
चंदोवय घंटा इय सोहा । एह पहावणात्ति दुहरोहा ॥
सयलहं धम्महं मज्झि गरिट्ठउ । अंगु पहावणंगु सुविसिट्ठउ ॥५॥

(घत्ता)

सुपहावणंगु जय पुज्जियउ । पुज्जहु भत्तीए भव्वयणा ।
अमरेसुरन्तु पाविह हधुउ । यय पणवे सय तिय सगणा ॥६॥
ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनाय नमः महार्घ्यं नि० स्वाहा ॥

(१६) प्रवचन वात्सल्य भावना-पूजा

चारित्र गुण युक्तानां मुनीनां शील धारिणाम् ।
गौरवं क्रियते यत्र—तद्वात्सल्यं च कथ्यते ॥१॥
ॐ ह्रीं प्रवचनवात्सल्याय नमः
जलादिफलपर्यन्तं अष्टद्रव्यैर्पूजयेत् अर्घ्यम् ॥

(घत्ता)

वर चरणा हरणालं किय हं। सवणहं संथुइ विरइज्जइ।
गउरत्तणु किज्जइ गुणधरहं तं। वच्छलु सुगइ णियइ ॥१॥

●

वच्छल्ले विज्जा सिद्ध होइ। वच्छल्ले सुर पणमंत लोइ।
वच्छल्ले ओपज्जंति रिद्धि। वच्छल्ले वर दंसण विसुद्धि ॥२॥

वच्छल्ले मइ सुइ विच्छरेइ। विच्छल्ले पाउण सचरेइ।
वच्छल्ले रेहइ तउ पहाणु। वच्छल्ले रेहइ मग्गझाणु ॥३॥

वच्छल्ले रेहइ सम्म इट्ठि। वच्छल्ले रेहइ सव्व सिट्ठि।
वच्छल्ले दाणाइय कयच्छ। वच्छल्ले फुरइ फसत्थ अत्थ ॥४॥

वच्छल्लु णरहं मंडणु मणुज्जु। वच्छल्लु करइ विहु लोयकज्जु।
जिणदेव सच्छ रिसिवर वराह। वच्छल्लु विहिज्जइ भवहराह ॥५॥

(घत्ता)

सोलहु मउ अंगउ इय थुणिवि। अग्घुत्तारइ जो जिणरू।
पालिविदंसण आपरिवितउ। होइ पुणिवि सो तित्थयरू ॥६॥

ॐ ह्रीं प्रवचनवात्सल्याय महार्घ्यं नि० स्वा० ॥

●

षोडशकारण समुच्चय जयमाला

जम्मंबुहि तारण कुगइ णिवारण, सोलह कारण सिवकरणं।
पण विवि थुइ भासमि, सत्त पयासमि, तित्थयरत्त लच्छि धरणं ॥१॥

पद्धड़ि-छन्द

भावहु भवियहु दंसण विसुद्ध। पणवीस दोस वज्जिय पसिद्ध।
पंच विहु विणउ पालहुजु हुत्त। जिण सासण मूलउ जो पहुत्त ॥१॥

सीलवि पालहु आइयार मुक्कु । सिव पंथ सहायउ जो गुरुक्कु ।
णाणोपयोग खिण खिण सरेहु । संकप्प वियप्पइ परिहरेहु ।।२।।
संवेउ अंगु भावहु मणम्मि । धम्मुजि धम्महु फल भेउ तम्मि ।
णिय सत्तिय दिज्जइ पत्तचाउ । अह करइ कषाय चउक्क चाऊ ।।३।।
तउ किज्जइ दुद्धर अइस सत्ति । छंडेपिणु दोविध संग तत्ति ।
वांछिज्जइ साहु समाहि चित्त । रायाइय दोसह किय णिमित्त ।।४।।
वइयावच्चुवि दस भेय फार । विरइज्जइ भव आवइ णिवार ।
अरहंत भत्ति अहणिसि कुणेहु । तहु णाम करूँ थिर मणु गुणेहु ।।५।।
पविहिज्जइ पुण आयरिय भत्ति । गुरुभत्ति देव वंदण जु हुत्ति ।
बहु सुयह भत्ति दोसावहार । विरइज्जइ णाण पवित्तयार ।।६।।
पवयणहु भत्ति जिण समय पोस । किज्जइ संसय तम दलण गोस ।
छावासइ किरिया णिरु करेहु । असुहासुह आवंतहु हरेहु ।।७।।
जिण मग्ग पहावण करहु भव्व । जिह अणहुंता गुण हुंति सव्व ।
वच्छल्लुवि किज्जइ यहु पहाण । फेडिप्पिण दुद्धरु मोह माण ।।८।।

घत्ता

इय सोलह भावण शिवसुइ दावण । थिर चित्ते जो कुवि करई ।
या विवि तित्थत्तणु पवपहिपयतणु । सो पंचमगइ संचरई ।।
ॐ ह्रीं दर्शन विशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो महार्घ्यं नि० स्वा०

—आशीर्वाद—

एताः षोडश भावनाः यतिवरा कुर्वन्ति ये निर्मला,
स्तेयै तीर्थकरस्य नाम पदवीमायुर्लभन्ते कुलम् ।
वित्तं - कांचन पर्वतेषु विधिना स्नानार्चनं देवता,
राज्यं सौख्यमनेकधा वरतपो मोक्षं च सौख्यास्पदम् ।।

—: इत्याशीर्वाद :—

—: आरती :—

आरति श्री सोलहकारण की, तीर्थंकर पदवी धारण की।

●

दरशविशुद्धि विनय संपन्नम्, निरतिचार व्रत शील सुधन्यम् ॥
सतत ज्ञान उपयोग अभीक्षण, उदासीन संवेगी चिन्तन।
शक्तित्याग मय आराधन की, आरति श्री सोलहकारण की ॥

●

शक्ति उघाड़ तपस्या कीजे, साधु-समाधि सुधारस पीजे।
वैयावृत्य भक्ति अरिहंता, गुरु आचार्य भक्ति निर्ग्रन्था ॥
बहुश्रुत भक्ति, भक्ति प्रवचन की, आरति श्री सोलह कारण की ॥

●

षट् आवश्यक भक्ति भावना, आतम-धर्म की हो प्रभावना।
वत्सलता गौवत्स सदृश हो, लौकिक और अलौकिक यश हो ॥
सत शिव सुन्दर पारायण की, आरति श्री सोलह कारण की ॥

●

षोडश कारण-भावना

श्री पं० हीरालाल जी जैन सिद्धान्त शास्त्री

(१)

कब दर्शन विशुद्धि मम होवे,
कब सब पर समदृष्टि होवे।
कब आपा पर भेद सुजानूं,
कब निज अनुभव आप सुजानूं ॥

(२)

कब रत्नत्रय विनय प्रकाशे,
कब निज आतम बोध प्रकाशे।
मन वच काय शुद्धि कब होवे,
कब सर्वाङ्ग विनय गुण होवे।।

(३)

कब कुशील तज शील सुधारूँ,
कब मैं निर्मलता विस्तारूँ।
कब श्रावक मुनि के व्रत पालूँ,
कब निज आतम रूप सम्हालूँ।।

(४)

नित हो मेरे शास्त्राभ्यास,
होवे जिससे ज्ञान—प्रकाश।
मेरी परिणति ऐसी होवे,
ज्ञान विमुख नहिं आतम होवे।।

(५)

पुत्र-मित्र, धन, धान्यादिक से,
हो वैराग्य सदा मम पर से।
इन्द्रिय विषय क्षणिक सुखदाता,
मेरा इनसे फिर क्या नाता।।

(६)

शक्त्यनुसार त्याग नित होवे,
लोभ पाप का बाप न होवे।
त्रिविध पात्र को त्रिविध योग से,
दान सदा ही देऊँ प्रेम से ।।

(७)

द्वादश तप आतम हितकारी,
तप ही काटै विपदा सारी।
संचित कर्म-दहन-हित-ज्वाला,
शिव सुख को यह देने वाला ।।

(८)

कब हो मेरे सो तप-धारण,
ये ही है जग-भ्रमण-निवारण।
हाय-हाय मैं पापी भारी,
इससे शक्ति न तप की धारी ।।

(९)

मरण और उपसर्ग जु होवे,
इष्ट-वियोग कभी या होवे।
भय न कभी तब मेरे होवे,
यह शुभ साधु समाधि सु होवे ।।

(१०)

आधि-व्याधि से पीड़ित जो हों,
रोग-शोक जिनको कुछ भी हों।
उनकी वैयावृत्य करूँ मैं,
जग उपकारी कार्य करूँ मैं ॥

(११)

निश्चय तप से मेरा रूप,
है अरहंत समान स्वरूप।
सो अरहंत भक्ति मम, होवे,
जिससे फिर भव भ्रमण न होवे ॥

(१२)

जबलों नहिं आचार्य रूप हो,
तबलों उनका गुण सुमरण हो।
मेरी परिणति उनके सम हो,
यही भावना मन में नित हो ॥

(१३)

इस पंचम कलि काल मंझारा,
जिन वाणी अमृत - रस - धारा।
वस्तु स्वरूप दिखावन हारी,
उसमें हो नित भक्ति हमारी ॥

(१४)

प्रवचन भक्ति सदा मम होवे,
प्रवचन अनुमत वचन सो होवे ।
स्व-पर भेद जिससे नित दीखै,
उसको ही हम निशि दिन सीखैं ।।

(१५)

षट् आवश्यक कब मैं धारूँ,
नित उनका ही भेद विचारूँ ।
कर्म-जाल से होऊँ विमुक्त,
बनूं आत्म गुण गण से युक्त ।।

(१६)

तीन जगत में जिन वृष सार,
सर्व जीव को है हितकार !
कैसे उसका होय प्रचार ।
कब सब जन उसको लें धार ।।

(१७)

प्रवचन धारक जे जन-जग में,
गौरव उनका है शिव मग में ।
कब प्रवचन वात्सल्य सु होवे,
कब समता शिव-सुख मय होवे ।।

(१८)

ये हैं षोडश कारण - भावन,
भावें जिनको मुनिजन, पावन।
भविक मोर-जन को जो जलधर,
होते वे इससे तीर्थंकर ॥

सोलह कारण भावनाएँ

कविवर श्री ज्ञान चन्द्र जी

१. दर्शन विशुद्धि भावना

दर्शनशुद्धि न होवत ज्यों लग, त्यों लग जीव मिथ्याती कहावै।
काल अनन्त फिरे भव में महा दुक्खन को कहूँ पार न पावै ॥
दोष पच्चीस रहित गुण-अम्बुधि सम्यक् दर्शन शुद्ध ठरावै।
ज्ञान कहे नर सोहि बड़ो मिथ्यात्व तजे जिन मारग ध्यावै ॥

२. विनय सम्पन्नता भावना

देव तथा गुरुराय तथा तप, संयम शील व्रतादिक धारी।
पाप के हारक काम के क्षारक, शल्य निवारक कर्म निवारी ॥
धर्म के धीर कषाय के भेदक, पंच प्रकार संसार के तारी।
ज्ञान कहे सुविनय सुखकारक, भाव धरो मन राखो विचारी ॥

३. निरतिचार शीलव्रत-भावना

शील सदा सुखकारक है, अतिचार विवर्जित निर्मल कीजे।
दानव देव करें तसु सेव, विषानल भूत-पिशाच पतीजे ॥
शील बड़ो जग में हथियार जु शील को उपमा काहे को दीजे।
ज्ञान कहे नहिं शील बराबर तातें सदा दृढ़ शील धरीजे ॥

४. अभीक्षण ज्ञानोपयोग-भावना

ज्ञान सदा जिनराज को भाषित, आलस छोड़ पढ़े जो पढ़ावे ।
द्वादश दोइ अनेक हूं भेद, सुनाम मती श्रुत पंचम पावे ।।
चारहुँ भेद निरन्तर भाषित ज्ञान अभीक्षण शुद्ध कहावे ।
ज्ञान कहे श्रुतज्ञान अनेक जु लोकालोकहि प्रगट दिखावे ।।

५. संवेग-भावना

भ्रात न तात न पुत्र कलत्र न दुर्जन सज्जन ए सब खोटो ।
मन्दिर सुन्दर काय सखा सब को इह को हम अन्तर मोटो ।।
भाउ के भाव धरी मन भेद न, नाहिं संवेग पदारथ छोटो ।
ज्ञान कहे शिव साधन कारज साह को काम करे जु वणोटो ।।

६. शक्तिस्त्याग-भावना

पात्र चतुर्विध देख अनूपम दान चतुर्विध भाव सू दीजै ।
शक्ति समान अभ्यागत को अति आदर से प्रणिपत्य करीजै ।।
देवत नर जे दान सुपात्रहि तास अनेकहि कारज सीजे ।
बोलत ज्ञान देहि शुभ दान जु भोग सु भूमि महासुख लीजै ।।

७. शक्तिस्तप-भावना

कर्म कठोर गिरावन को निज शक्ति समान महातप कीजे ।
बारह भेद तपे तप सुन्दर पाप जलाँजलि काहे न दीजे ।।
भाव धरो तप घोर करो नर जन्म सदा फल काहे न लीजे ।
ज्ञान कहे तप जे नर भावत ताके अनेकहि पातक छीजे ।।

८. साधु-समाधि-भावना

साधु समाधि करो नर भावक पुण्य बड़ो उपजे अघ छीजे ।
साधु की संगति धर्म को कारण भक्ति करे परमारथ भीजे ।।

साधु समाधि करे भव छूटत कीर्ति छटा त्रैलोक में गाजे ।
ज्ञान कहे यह साधु बड़ो गिरि, शृंङ्ग गुफा बिच जाय विराजे ॥

९. वैयाव्रत करण-भावना

धर्म के योग व्यथा उदई मुनि पुंगव को तसु भेषज कीजे ।
पित्त कफानल सांस भगन्दर ताप को सूल महागद छीजे ॥
भोजन साथ बनाय के औषधि पथ्य कुपथ्य विचार के दीजे ।
ज्ञान कहे शुभ ऐसी वैय्यावृत नित्य करे तसु देव पतीजे ॥

१०. अर्हन्त भक्ति-भावना

देव सदा अरिहन्त भजो जेई दोष अठारह किये अति दूरा ।
पाप पखार भये अति निर्मल, कर्म कठोर किये चकचूरा ॥
दिव्य अनन्तचतुष्टय शोभित घोर मिथ्यात्व निवारण सूरा ।
ज्ञान कहे जिनराज अराधो निरन्तर जे गुण मन्दिर पूरा ॥

११. आचार्य भक्ति-भावना

देवत ही उपदेश अनेक सु आप सदा परमारथ धारी ।
देश-विदेश विहार करें दश धर्म धरें भव पार उतारी ॥
ऐसे अचारज भाव धरी भज सो शिव चाहत कर्म निवारी ।
ज्ञान कहे गुरु भक्ति करो नर देखत हो मनमाँहि विचारी ॥

१२. बहुश्रुत भक्ति भावना

आगम छन्द पुराण पढ़ावत साहित तर्क वितर्क बखाने ।
काव्य कथा नव नाटक पूजन ज्योतिष वैद्यक शास्त्र प्रमाने ॥
ऐसे बहुश्रुत साधु मुनीश्वर जो मन में दोउ भाव न आने ।
ज्ञान कहें तस पाय नमूँ श्रुत पार गये मन गर्व न आने ॥

१३. प्रवचन भक्ति भावना

द्वादश अंग उपांग जिनागम ताकी निरन्तर भक्ति करावे ।
बेद अनूपम चार कहे तस अर्थ भले मनमाँहि ठरावे ॥

पढ़ बहु भाव लिखो निज अक्षर भक्ति करी बहु पूज रचावे ।
ज्ञान कहे जिन आगम भक्ति करो सद्बुद्धि बहुश्रुत पावे ॥

१४. षट् आवश्यक भक्ति भावना

भाव धरे समता सब जीव सों स्तोत्र पढ़े मुख से मनहारी ।
कायोत्सर्ग करे मन प्रीत सु वन्दन देव तणों भवतारी ॥

ध्यान धरी मद दूर करी दोउ बेर करे पड़ कम्मन भारी ।
ज्ञान कहे मुनि सो धनवन्त जु दर्शन ज्ञान चरित्र उधारी ॥

१५. धर्म-प्रभावना-भावना

जिन पूजा रचो परमारथ सों जिन आलय नृत्य महोत्सव ठाणों ।
गावत गीत बजावत ढोल मृदंग के नाद सुधांग वखाणो ॥

संग प्रतिष्ठा रचो जल जातरा सद्गुरु को सामों कर आणो ।
ज्ञान कहे जिनमार्ग प्रभावन भाग्य विशेष सु जानहि जाणो ॥

१६. प्रवचन वत्सलत्व-भावना

गौरव भाव धरो मन से मुनि पुंगव को नित वत्सल कीजे ।
शील के धारक भव्य के तारक तासु निरन्तर स्नेह धरीजे ॥

धेनु यथा निज बालक के अपने जिय छोड़ि न और पतीजे ।
ज्ञान कहे भवि लोक सुनो जिन वत्सल भाव धरे अघ छीजे ॥

आशीर्वाद

सुन्दर षोडशकारण भावन निर्मल चित्त सुधार के धारे।
कर्म अनेक हने अति दुर्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारे॥

दुःख दरिद्र विपत्त हरे भव सागर को पर पार उतारे।
ज्ञान कहे इह षोडशकारण कर्म निवारण सिद्ध सु ठारे॥

जय अरिहन्ता सिद्ध महन्ता ध्यावत संता
जय-जय.........

मैं तुमको ध्याऊँ शीश नवाऊँ हर्ष बढ़ाऊँ
जय-जय.........

हो करुणाधारी विपत बिदारी सुन जगतारी
जय-जय.........

सुख सम्पत् दीजिये ढील न कीजे अब सुध लीजे
जय-जय.........

तेरी महिमा है अपार गण धर न पावें पार
मैं करता हूँ पुकार सुन लो मेरी सरकार
सब विघ्न नसाओ धीरज बँधाओ दर्श दिखाओ
जय-जय.........

धन दर्शन देखे भगवन्त आज महाफल होए अचन्त
प्रभू जी के चरण कमल को निवांऊ जन्म करतार्थ मेरे भयौ
कर जुग-जुग निवाऊं शीश मुभ दुःख दूर करो जगदीश
तुम स्वामी महा प्रवीन दुःख मेटन सहज शरीर
श्री आदिनाथ अजित सम्भव सुमरूँ अभिनन्दना
चरण जिन जी के शीश धर-धर करूँ पल पल बन्दना
श्री सुमत नाथ पदम प्रभु जग तारण तरण सुपार्स नाथ जी
श्री चन्दा प्रभु जी के चरण बन्दु मिटे जम के तराश जी
श्री पुष्प दन्त शीतलनाथ श्रेयांस भवनीश जी
श्री वास पूज्य विमल अनंत धर्म नाथ जी का ध्यान नित हृदय धरूँ
श्री शान्तिनाथ जी के चरण पुरशत फीर चौरासी ना मिलूं
श्री कुन्थ नाथ अरिनाथ मलनाथ के शरण हूँ
श्री मुनीसुव्रत स्वामी के पठत पायन मिटत जन्म मरण जी
श्री नेमनाथ अरिष्ट नेमी परसपारस ध्याईये
श्री महावीर जी के चरण बन्दू निर्भय सब सुख पाइये
छांड़ सकल मिथ्यात को निज धर्म की रक्षा करूँ
श्री अरिहंतदेव जी के नाम जप-जप मोक्ष मार्ग पग धरूँ
सदा तो मंगल होए जपत ये चौबीसों नाम कहें ऋषि
ज्ञान निश्चय महा सुख की खान है